

# आगर के मादी

उपाध्याय अमर मुनि



वीरायतन - राजगृह

# सागर के मोती

उपाध्याय अमरमुनि

संकलन  
साध्वी श्री शुभम्

वीरायतन - राजगृह

पुस्तक :

सागर के मोती

लेखक :

उपाध्याय अमरमुनि

संकलन :

साध्वी श्री शुभम्

द्वितीय संस्करण :

१५ अगस्त १९९१

प्रकाशक :

वीरायतन, - राजगीर

पिन : ८०३११६ ( बिहार )

मूल्य :

३. ५० रुपया

मुद्रक :

वीरायतन मुद्रणालय, राजगीर

## प्राक्कथन

ज्योति - पुरुष पूज्य गुरुदेव उपाज्याय श्री अमरमुनिजी महान् सन्त एवं दार्शनिक हैं, इतना ही नहीं, गहन विचारक भी हैं। उनके चिन्तन की धारा अन्तर् की गहराई से उद्भूत होकर प्रवहमान है। वस्तुतः वह आत्म-ज्योति से अप्लावित पावन त्रिवेणी है और है सहज - स्वभाविक। वह पीयूषवर्षी धारा बिना किसी दबाव के अनायास ही, सहज स्वभाव से ही प्रवहमान है।

जिसने उनकी दिव्य लेखनी का अध्ययन - अनुशीलन किया है, उनकी ज्योतिर्मय वाणी को सुना है, उसने दर्शन किया है, उसने साक्षात्कार किया है, चिरन्तन सत्य का। सत्य, सत्य है। वह न तेरा है, न मेरा। सम्प्रदायों के, पंथों के, परम्परागत मान्यताओं के जहर से मुक्त। रूढिवादी अकल्याणकारी परम्पराओं के तटों से पूर्णतः उन्मुक्त। किसी भी तरह की क्षुद्र प्रतिबद्धताओं की वेड़ियों के बन्धन से पूर्णतः अबद्ध। ताजा, सुगन्धित, सदा-सर्वदा नूतन और शुद्ध - विशुद्ध जीवन की कल - कल, छल - छल बहती सहस्ररूपा अमृत - स्रोतस्विनी है, सत्य की उज्ज्वल धारा।

यह है पूज्य गुरुदेव की अन्तर् - ध्वनि से, आत्म - चिन्तन से उद्भूत साहित्य सागर, अक्षय क्षीरोदधि। प्रस्तुत पुस्तक—इस अमृत पयोनिधि का एक जलांश है, जल - कण है, परन्तु है अथाह सागर का ही प्रतिरूप। क्षीरोदधि की एक नन्हीं-सी बूँद क्षीर - सागर से भिन्न नहीं है और क्षीर-सागर भी बूँद से भिन्न कहाँ है। इसलिए बूँद सागर में समाहित है और सागर भी बूँद में। अतः उस महोदधि के परिसूचक विचार जीवन के

सही—सम्यक् - दिशा दर्शन हेतु, आपके अध्ययन एवं चिन्तन के लिए आपके कर - कमलों में अर्पित हैं ।

साध्वीरत्न परम विदुषी महासती श्री सुमतिकुँवरजी महाराज का १९८६ में महाराष्ट्र में स्थानकवासी समाज के प्रमुख क्षेत्र घोड़नदी (पूना) में वर्षावास हुआ । परम श्रद्धेय महासतीजी की सत्प्रेरणा से प्रस्तुत वर्षावास में जैन समाज में, विशेष रूप से युवा - मानस में नव - चेतना का संचार हुआ । युवक-युवती, बालक - बालिका और साथ ही वयोवृद्ध मानस में भी एक ऐसी ज्योति जगी है कि आध्यात्मिक, धार्मिक अध्ययन, जन - सेवा एवं समाज-सुधार के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य इस वर्षावास में हुए हैं । ध्यान-शिविर, आध्यात्मिक विचार - गोष्ठियाँ, धार्मिक अध्ययन के क्लास, कन्या-गुरुकुल की योजना आदि उल्लेखनीय कार्य हैं । उन्हीं में से प्रस्तुत पुस्तक-प्रकाशन का विचार उदित हुआ और क्रियान्वित भी ।

आप स्वयं अनुभव करें कि शब्द-शरीर के ज्ञान-कोष से पूज्य गुरुदेव आपके समक्ष उपस्थित हैं । और, उस ज्योति - स्तंभ में आप अपने जीवन के हर मोड़ पर सम्यक् दिशा - दर्शन एवं दिव्य प्रेरणा पाएँगे ।

साध्वी श्री शुभम्जी, पूज्य महासतीजी को एक सुयोग्य प्रशिष्या है । उनके सद्-प्रयास से यह द्वितीय संस्करण आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है । आप अपने उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में प्रेरणा प्राप्त करें और बागे बढ़ें, इसी शुभाशंसा के साथ ।

**—दर्शनाचार्य साध्वी चन्दना**

वीरायतन, राजगृह

## प्रकाशकीय

सिद्धान्त चक्रवर्ती, सर्वश्रुत वारिधि प्रज्ञामूर्ति पूज्य गुरुदेव उपाध अमरमुनिजी महाराज गहन विचारक, तत्त्व - चिन्तन के साथ - साथ स्वभाव से कवि भी हैं। कवि हृदय कोमल, मधुर एवं स्निग्ध; और होता है विराट्। इसलिए कवि जीवन का द्रष्टा एवं स्रष्टा हो यह विशाल दृष्टि एवं उदात्त विचार पूज्य गुरुदेव के साहित्य में यत्र सर्वत्र व्याप्त है।

पूज्य गुरुदेव की लेखनी तत्त्व, दर्शन एवं आगम जैसे गंभीर विषयों तक ही सीमित नहीं रही, उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं पर कलम चलाई है।

भले ही कथा - कहानी हो, रूपक हो, काव्य - कविता हो, संस्मरण हो, दैनन्दिनी (डायरी) हो, उसमें उनका ज्योतिर्मय चिन्तन हर पक्ति में आलोकित है, जो जीवन को सही दिशा - दर्शन देता है।

‘सागर के मोती’ उनके चिन्तन का महत्त्वपूर्ण संकलन है। विदुषी साध्वी श्री शुभम्जी ने इसका संकलन किया है। सर्व - प्रथम कुछ लघु कथाएँ हैं, फिर मुवतक हैं और अन्त में है ‘अमर डायरी’।

दर्शनाचार्य महासती श्री चन्दनाजी ने प्राक्कथन लिखने की महत्ती कृपा की एवं साध्वी श्री चेतनाजी ने प्रूफ संशोधन में सहयोग दिया, उसे भुला नहीं सकते।

[ ५ ]

भुला नहीं सकते।

महाश्रमण भगवान् महावीर के प्रथम शिष्य गणधर गौतम के २५००वें निर्वाण पर्व पर प्रस्तुत युस्तक पाठकों के कर - कमलों में समर्पित की। पाठकों ने उत्साह के साथ अध्ययन किया, जिससे यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं। विश्वास है, कि इस पर चिन्तन करके सहृदय पाठक जीवन विकास की दिशा में आगे बढ़ेंगे।

अध्यक्ष

वीरायतन-राजगृह





# सागर के मोती







## अमृतयोगी सन्त

एक सन्त अपने-आप में मगन कहीं चले जा रहे थे। मार्ग में एक चरवाहे ने उनसे कहा— 'महाराज ! इस पथ में तो एक भयंकर सर्प रहता है। उसकी विषैली फुफकार से मनुष्य की तो कौन कहे, पशु - पक्षी भी जीवित नहीं रह सकते। अतएव आप दूसरे पथ से जाइए।'

सन्त ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। वे चुप - चाप उसी मार्ग से चलते रहे, और सीधे सर्प के द्वार पर जा कर खड़े हो गए। आज उनके अन्तर्मन में विष को अमृत बनाने की एक विलक्षण कामना जाग उठी थी।

थोड़ी देर के पश्चात् सर्प विषैली वायु के बादल उड़ाता हुआ बाँबी से वाहर निकला। वह आश्चर्य में था कि 'यह कौन है, जो मेरे सिर पर ही आकर खड़ा हो गया है। क्या इसे मृत्यु का भय नहीं है ?'

सर्प ने क्रोध में आकर सन्त के पैरों में डंक मारा, किन्तु सन्त फिर भी शान्त थे, आत्म प्रसन्नता की अमृत लहरों में तैर रहे थे। कुछ देर विष और अमृत का यह द्वन्द्व युद्ध चलता रहा। आखिर अमृत ने विष पर विजय प्राप्त की।

सर्प को आत्म बोध-मिला । वह अपनी भूलों पर पश्चात्ताप रता हुआ बिल में घुस गया । उस दिन से साँप ने किसी को काटा नहीं, न किसी को मारा । वह सताया भी गया, फिर भी शान्त ही रहा और अमृतभाव की उपासना में लगा रहा !

यह सन्त भगवान् महावीर थे । इनका मिशन था, विष के बदले में भी अमृत बांटना । जिसके अन्दर जहर न हो, उसके लिए दुनिया मे कहीं भी जहर नहीं है ।

यह कथानक विराट् आत्म-शक्ति का एक छोटा-सा निदर्शन है ।

## कोऽरुक् ?

उपनिषद् में एक कथा आती है, जिसमें एक जिज्ञासु किसी तत्त्ववेत्ता ऋषि से पूछता है— “कोऽरुक् ? नीरोगी कौन है ?

विचारक ऋषि ने अभक्ष्य, अशुद्ध तथा अधिक खाने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए कहा— “हितभुक्, मितभुक् ।”

ऋषि के उत्तर का भावार्थ यह है कि जो पथ्य खाने वाला है और कम खाने वाला है, वह नीरोगी है, स्वस्थ है । हिन्दी का देहाती कवि घाघ भी कहता है :—

“रहै नीरोगी जो कम खाय,  
विगरै काम न, जो गम खाय !”



## तिब्बत - नरेश का राष्ट्र - प्रेम

दशवीं शताब्दी की बात है, 'अत्यन्त महान् और अत्यन्त तेजस्वी तिब्बत के राजा जशीहोड़ बड़े ही राष्ट्र - भक्त तथा संस्कृति - प्रेमी नरेश थे। वे अपने पिछड़े हुए देश का उद्धार करना चाहते थे, और इसके लिए मानवता के महान् कलाकार श्री आचार्य दीपंकर विज्ञान को भारत के विक्रमशिला विद्यापीठ से अपने देश में बुलाना चाहते थे।

उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि 'आचार्यजी' को बुला कर उनके हाथों तिब्बत का उद्धार कराऊँगा, भले ही इसके लिए मुझे कुछ भी कष्ट उठाना पड़े।'

उक्त दृढ़ निश्चय के बाद, आचार्यजी को बुलाने के लिए विद्वानों का एक दल भारत भेजा, और स्वयं सोने की खोज में निकल पड़े। क्योंकि तिब्बत के राजकोष में जितना सोना था, आचार्य दीपंकर के स्वागत में तथा उनके द्वारा होने वाले शिक्षा-प्रचार में, उससे अधिक सोना खर्च होने का अनुमान था।

उन दिनों नेपाल के समीप राजा गारलंग के राज्य में सोने की एक खान निकली थी। तिब्बत नरेश उस ओर ही चल पड़े। गारलंग बौद्ध-धर्म का कट्टर दुश्मन था और साथ ही उसे तिब्बत नरेश से चिढ़ भी थी। अतः उसने धोखे से तिब्बत नरेश को बंदी बना कर घोषणा की कि यदि मुझे जशीहोड़ के बराबर सोना मिलेगा, तो मैं उन्हें मुक्त करूँगा, अन्यथा प्राण - दण्ड दूँगा।

तिब्बत-नरेश का राष्ट्र-प्रेम :

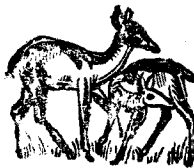
३

इस पर तिब्बत - नरेश के बेटे और भतीजे जी - जान लगा कर स्वर्ण - संग्रह करने लगे, पर तिब्बत-नरेश को यह बात पसंद न आई। उन्होंने अपने बेटे और भतीजे को ऐसा करने से रोका और कहा—‘मेरी मुक्ति के लिए जो स्वर्ण - संग्रह कर रहे हो, उसे आचार्य दीपंकर के स्वागतार्थ रख छोड़ो। मेरी मुक्ति के लिए तुम लोग चेष्टा मत करो, अन्यथा मुझे दुःख होगा। मेरे गरीब देश का सोना, इस तुच्छ देह की मुक्ति में खर्च न हो कर सम्पूर्ण देश की अज्ञानता से मुक्ति में खर्च होना चाहिए।’

मृत्यु के कुछ काल पूर्व तिब्बत - नरेश ने अपने भतीजे से कहा था—“पुत्र, तुम रोना मत। यह बड़े सौभाग्य एवं आनन्द की बात है कि आज मैं धर्म और देश के नाम पर बलिदान हो रहा हूँ। ऐसा सुयोग बड़े सौभाग्यशाली को ही मिलता है। किन्तु, मेरी अन्तिम अभिलाषा है कि तुम आचार्य दीपंकर को अवश्य बुलाना। उनके आने से तिब्बत में नई जागृति फलेगी। आशा है, तुम मेरी यह अभिलाषा अवश्य पूरी करोगे।”

आचार्य दीपंकर साठ वर्ष की वृद्धावस्था में भी तिब्बत पहुँचे, तिब्बत नरेश के आत्म बलिदान ने उन्हें मुग्ध कर दिया था।

किसी भी समाज या राष्ट्र को सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित बनाने के लिए तिब्बत नरेश जैसे आत्म - भोग देने वाले वीरों की आवश्यकता होती है।



## हिंसा या अहिंसा ?

मालव देश के कुछ म्लेच्छ शबर लोग, जो लूट मार का काम करते थे, एक वार किसी गाँव पर चढ़ आए। कुछ आर्थिकाओं और एक क्षुल्लक साधु को उठा ले गए। जंगल में जाकर उन्होंने उसको एक लुटेरे को सौंप दिया और वे सब पास के किसी गाँव से दूसरे लोगों का अपहरण करने चले गए।

थोड़ी देर बाद पहरेदार लुटेरे को प्यास लगी, तो उसने कहा—‘तुम यहाँ चुपचाप बैठे रहना, मैं नीचे बावड़ी में जा कर पानी पी आता हूँ। वह पानी पीने बावड़ी में उतर गया। गरमी अधिक थी, अतः स्नान भी करने लगा।

क्षुल्लक ने सोचा, ‘क्या हम सब मिलकर भी इस अकेले आदमी के लिए पर्याप्त नहीं हैं ? यदि यह अवसर चूक गए, तो फिर इन साध्वियों का क्या होगा ? क्या इन सबको अपने धर्म से—सतीत्व से, हाथ न धोना पड़ेगा ?”

क्षुल्लक ने साध्वियों को चोर पर आक्रमण करने का इशारा किया। सबने आस - पास से बड़े - बड़े पत्थर इकट्ठे कर लिए। क्षुल्लक ने एक बड़ा पत्थर अचानक ही चोर के ऊपर फेंक कर मारा। उसी समय सब साध्वियों ने भी मिलकर एक साथ चोर पर पत्थर बरसाने शुरू कर दिए। अन्ततः चोर मर गया, और इन सबको उसके पंजे से छुटकारा मिल गया।

हिंसा या अहिंसा ? :

५

यह कथा जैन - साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ व्यवहार भाष्य की है, जो जैन - धर्म के अहिंसा सम्बन्धी दृष्टिकोण को नए रूप में उपस्थित करती है। जो कुछ क्षुल्लक साधु ने किया, वह उस समय उसका कर्त्तव्य था। यदि नहीं, तो फिर आप क्या सुभाव देते हैं ? बाहर की क्षणिक अहिंसा या हिंसा के घेरे में नारी-जीवन को सदा के लिए गुंडों के हाथ बर्बाद कर देना, क्या कोई बहुत बड़ा धर्म है, आदर्श है ?



## अहिंसा या हिंसा

एक चोर एक भिक्षु को बहुत तंग करता था। भिक्षु बेचारा बहुत असमर्थ था, करता भी क्या? चोर अपनी हरकत से बाज नहीं आता था। एक दिन चोर ने साधु को बहुत तंग किया। साधु ने भी उससे तंग आकर एक रज्जु-यन्त्र बना रखा था। साधु की वस्तुएँ लेते समय चोर का हाथ उस रज्जु-यन्त्र पर पड़ गया और वह उससे अपने आप ही बन्ध गया।

चोर के बन्ध जाने पर भिक्षु ने उसकी पीठ पर खासा अच्छा प्रहार किया, और कहा—

“बुद्धं सरणं गच्छामि।”

फिर दूसरा प्रहार किया और कहा—

“धम्मं सरणं गच्छामि।”

फिर तीसरा प्रहार किया और कहा—

“संघं सरणं गच्छामि।”

तीनों प्रहारों से चोर तिलमिला गया और कहा कि मुझे अब छोड़ दो, जो तुम कहोगे, वही करूँगा। भिक्षु ने उसे छोड़ दिया।

तब चोर ने भिक्षु से कहा कि यह तो बड़ा कुशल था कि कृपालु बुद्ध ने तीन ही शरण का विधान किया था। यदि कहीं अधिक शरण का विधान होता, तो तुम मुझे मार ही डालते।

—दिव्यावदान [चीनी ग्रन्थ]



## जड़ न उखाड़िए

परम्परागत अनुश्रुति है कि एक वार भगवान् बुद्ध अपने संघ सहित कौशल में गए। वहाँ एक जमींदार ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया। भोजन के बाद वह बुद्ध सहित संघ के सब लोगों को अपने बाग की सैर कराने ले गया। बाग बड़ा सुन्दर था, परन्तु उसके बीचों-बीच एक बड़ा-सा स्थान था, जिस पर एक भी पेड़ न था। संघ के लोगों ने जमींदार से पूछा—‘बात क्या है? इस स्थान पर वृक्ष क्यों नहीं है?’

जमींदार ने नम्रतापूर्वक कहा—“महात्मागण ! बात यह थी कि जिन दिनों यह बाग लगाया जा रहा था, उन दिनों मैंने एक लड़के को इस बाग पर नियुक्त किया था कि वह वृक्षों को सींचे। पहले तो वह सब वृक्षों को एक समान पानी देता रहा, बाद में उसे ध्यान आया कि इससे क्या लाभ? जिस पौधे की जड़ जितनी बड़ी हो, उसे उतना ही अधिक पानी देना चाहिए, और जिसकी जड़ छोटी हो, उसे उतना ही कम? उसने यही करना शुरू किया। वह पहले पौधों की जड़ उखाड़ कर उसकी लम्बाई देखता, और बाद में उन्हें पुनः गाड़ कर उसी अनुपात से पानी देता। परिणाम यह हुआ, सभी पौधे सूख गए।

मनुष्य को अति तर्क के फेरे में न पड़ना चाहिए। किसी को कुछ देना हो, तो सहज भाव से अपनी शक्ति अनुसार दे डालिए। लम्बी बहस के द्वारा उसकी जड़ उखाड़ कर देखने का प्रयत्न करना ठीक नहीं है। किसी का गुप्त भेद खोलकर क्या लेना है? ऐसा करने से उपकार का बाग सूख जाता है।

## ईसा की क्षमा

ईसा से एक आदमी कटु वचन बोल रहा था और वे उससे नम्र और मधुरता से बातें कर रहे थे ।

एक दूसरे आदमी ने देखा तो कहा—“आप इस दुष्ट से इनती नरमी का बर्ताव क्यों कर रहे हैं ?”

ईसा ने हँस कर कहा—“वस्तु में से वैसा ही रस तो टपकेगा, जैसा कि उसमें होगा ।”



## कर्तव्य - निष्ठा

एक बार की बात है—पेरिस में बड़ा ही भयंकर दंगा हुआ । 'मेथ्यू डेन्जलर' नामक पत्रकार दंगाइयों द्वारा फेंके जाने वाले पत्थरों की वर्षा में बैठा अपने पत्र के लिए विवरण लिख रहा था । दंगा काबू में न आया, तो अन्त में विवश होकर फौज ने गोली चला दी ।

पत्रकार को भी गोली लगी और वह घायल होकर गिर पड़ा । सहायता के लिए डॉक्टर आया, पूछा— “क्या तुम भी घायल हो ?” उत्तर मिला— “हाँ इतना घायल की लिख भी नहीं सकता ।”

डॉक्टर ने कहा— “लिखने में क्या रखा है ? अब तो तुम्हारे लिए सबसे मुख्य काम आराम करना है ।” पत्रकार ने कहा— “आराम मुख्य नहीं है । मुख्य काम है अपने कर्तव्य की पूर्ति करना । सबके अपने-अपने काम होते हैं । मैं पत्रकार हूँ, मेरा काम घटना का वर्णन लिखना है । यह मेरी कलम लो और इस पृष्ठ पर नीचे लिख दो—सायंकाल तीन बजकर बीस मिनट पर फौज की गोली चलने से तीन घायल हुए, और एक मरा ।

डॉक्टर ने पूछा— “मरा कौन ?” उत्तर मिला— “मैं !” और इतना कहते-कहते उसके प्राण निकल गए ।



## ‘क्या करें’ का प्रश्न ही क्यों ?

गांधीजी ने लम्बे उपवास शुरू कर रखे थे। उपवास में वे जिन्दा रहेंगे या मर जाएँगे, इसका किसको पता था ? सब ओर एक भय और आशंका का वातावरण घनीभूत हो रहा था ! इस पर आश्रम के भाइयों ने उनसे पूछा— “आप यदि उपवास में चल बसे, तो हम कौन-सा काम करें ?

गांधीजी ने जबाब दिया—“इस तरह का सवाल ही आपके सामने कैसे खड़ा हुआ ? मैंने आपके लिए काफी काम रख छोड़ा है। हिन्दुस्तान में खादी तैयार करनी है, खादी का शास्त्र बनाना है। जात-पात की बीमारी को दूर करना है। भूखे देश के लिए रोटियों को प्रबन्ध करना है। इतना बड़ा काम आपके लिए होते हुए भी आपको ‘क्या करें?’ ऐसी चिन्ता क्यों होती है ?

संसार में कार्य को कमी नहीं, काम करने वालों की कमी है। मनुष्य के जीवन में ‘क्या करें’ का प्रश्न ही क्यों पैदा हो जबकि उसके चारों ओर काम का क्षीर-सागर ठाठें मार रहा है।



‘क्या करें’ का प्रश्न ही क्यों ? :

११

## चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार

सिक्ख - पंथ के दशम गुरु गोविन्दसिंहजी के चार पुत्र थे। उनके दो बड़े पुत्र चमकोर के युद्ध में लड़ते हुए मारे गए। और दो छोटे पुत्र, पकड़े जाकर सरहिन्द में मुसलमानों द्वारा दीवार में चुन दिए गए। उन्हें मुसलमान बन जाने को कहा गया, किन्तु वे अपने धर्म पर दृढ़ रहे और हँसते - हँसते ही धर्म पर बलिदान भी हो गए।

गुरु गोविन्दसिंह फिर भी निराश न हुए। उनके हृदय में अब भी धर्म रक्षा के लिए बलिदान होने की तरंगें उठ रही थीं। जब वे घर पर आए, तो बच्चों की माता ने रोते हुए पूछा—‘मेरे पुत्र कहाँ हैं? आप उन्हें कहाँ मौत के मुँह में डाल आए।’ इस पर गुरु गोविन्दसिंह ने गंभीर भाव से जो उत्तर दिया, वह देश भक्ति के क्षेत्र में अपना सानी नहीं रखता। उन्होंने कहा—

“इस भारत के सीस पर, चारों दीने वार।  
चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार ॥”



## मैं भी सो सकता हूँ

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सन् १९२१ में, गाँवों का एक लंबा राष्ट्रिय भ्रमण कर रहे थे। जहाँ भी जाते, जनता के जीवन में एकाकार हो जाते थे। उसी समय की बात है कि—नेहरूजी एक छोटे से गाँव में, एक किसान के अतिथि हुए। भोजन के लिए मिली मकई की रूखी रोटी और साग। नेहरूजी ने वही बड़े आनन्द से खाया।

रात को सोते समय प्रश्न हुआ—अब सोने का क्या इन्तजाम हो? किसान बेचारा घर में से एक खाट उठा लाया। प्रश्न हुआ—“इस पर कौन सोता है?”

“वहू सोती है।”

“आज वह किस पर सोएगी।”

“स्त्री है, जमीन पर सो रहेगी।”

“नेहरूजी तमक कर बोले—वाह ! स्त्री जमीन पर सो सकती है, तो मैं भी सो सकता हूँ।”

तय कर लेने के बाद जवाहरलालजी के कदम उठने में क्या देर? किसान के बरामदे में एक तरफ पायल बिछा हुआ था, उसी पर ओवरकोट बिछाकर और एक कंत्रल, जो मोटर में साथ आया था, ओढ़ कर वे सो गए। किसान के दुःख - सुख में शरीक होकर जवाहरलालजी ने तो जैसे उसके घर पर कब्जा ही कर लिया था। इतने बड़े मेहमान की ऐसी सादगी देखकर उस रात गाँव के किसानों के घर-घर में यही चर्चा रही।

मैं भी सो सकता हूँ :

## महत्ता का मानदण्ड

फ्रांस ने पूरा प्रयत्न किया, पर वह हॉलैण्ड को पराजित नहीं कर सका। झुंझला कर एक दिन चौदहवें लूई ने अपने मंत्री कालवर्ट से कहा— “हम इतने बड़े धन - जन सम्पन्न देश के बादशाह हैं, पर उस जरा से देश को नहीं हरा सके ?” ऐसा क्यों ? :—

विनम्रता से कालवर्ट ने कहा—

“महाराज ! किसी देश की महत्ता उसकी लम्बाई - चौड़ाई, सेना एवं वैभव आदि पर आश्रित नहीं होती, बल्कि वहाँ की जनता के ऊँचे और उज्ज्वल चरित्र पर निर्भर होती है।”



## मूर्ख आलोचक

एक वार लार्ड नार्थस नाटक देख रहे थे। उनके पास ही एक मूर्ख आलोचक भी बैठा था, जो बहुत उतावला और वाचाल प्रकृति का धनी था।

उसने लार्ड से सामने की ओर संकेत करते हुए कहा—  
‘देखिए, वह सामने वाली औरत कितनी भद्दी है?’

उत्तर मिला—“हाँ, वह मेरी स्त्री है।”

उस मूर्ख ने कुछ लज्जित होकर अपनी भेष मिटाते हुए फिर कहा—“वह नहीं साहब, उसकी बगल वाली !”

लार्ड ने गंभीर भाव से कहा— “अच्छा वह, वह तो मेरी बहिन है।”

व्यर्थ ही इधर - उधर के लोगों पर नुक्ताचीनी करने वाले अविवेकी वाचाल व्यक्ति समय पर इतने लज्जित होते हैं, कि कुछ पूछो नहीं। अतः मनुष्य को तौलकर बोलना चाहिए।





## यह सब किसलिए ?

गगन चुम्बी हिमगिरि के शिखरों के बीच तिब्बत में एक वृद्ध बौद्ध भिक्षु रहता था। साठ वर्ष की तपस्या द्वारा उसने शान्ति प्राप्त की थी। पल - पल में 'बुद्ध' शरणं गच्छामि' रट-रट कर उसने अपने अन्दर की पशु-वृत्ति को वश में कर लिया था। सनातन हिम का दर्शन करके उसकी दृष्टि निर्मल हो गई थी। वह सुखी था, शान्त था। भावनामय जीवन का आनन्द उसने प्राप्त किया था। अनुकम्पा से द्रवीभूत होकर उसने सारे जगत् को अपने में लपेट लिया था।

उसके पास इक्कीस वर्ष की एक आस्ट्रेलियन विमान-विहारिणी नव - युवती आई। बाल्यावस्था से ही उसने विज्ञान को तथा विज्ञान द्वारा प्राप्त शक्ति को अपना लिया था। गर्व के साथ वह वृद्ध साधु के पास आई। वह समझ रही थी, पाषाण-सा जड़ वह साधु निकम्मा है। वृद्ध की ओर तिरस्कार पूर्वक निहारते हुए युवती ने अपना परिचय दिया—

“मैं इक्कीस वर्ष की तरुणी हूँ। मैं विमान - विहारिणी हूँ। इस विषय में मेरे जितना योग्य और कोई नहीं।”

वृद्ध ने पूछा—“तुमने क्या किया है ?”

तरुणी ने कहा—“मैं उन्नीस वर्ष की थी, तब एक घण्टे में दो-सौ मील की गति से मेलबोर्न से उड़ कर बम्बई आई थी। बीस वर्ष की हुई, तब तीन - मील प्रति घण्टे की चाल से

मेलबोर्न से लंदन गई। और अब चार - सौ मील प्रति घण्टे के वेग से समस्त संसार के आर - पार उड़ आई हूँ।”

शान्त और संयमी वृद्ध ने साठ वर्ष के भावनामय जीवन से प्रेरित होकर प्रश्न किया—“इतनी शीघ्रता किसलिए ?”

तरुणी चुप थी। उसे कोई उत्तर नहीं मिल रहा था।  
आखिर इस दौड़ - धूप का कोई उद्देश्य ?

यह पूर्व का प्रश्न है, जो पश्चिम से ठोक उत्तर की माँग कर रहा है। इतना उतावलापन किसलिए ? एक - दूसरे का विनाश करने के लिए ? मानव का स्वातन्त्र्य और स्वाभिमान छीन लेने के लिए ? मानव को अपने श्रम से जो सुख - सुविधा प्राप्त है, उसे हर लेने के लिए ? मैं भी उस वृद्ध भिक्षु का प्रश्न पुनः पूछ लेता हूँ—यह सब जल्दवाजी किसलिए ?

## शुभ काम स्वयं आशीर्वाद है ?

राजस्थान की एक सुप्रसिद्ध सेविका के सम्मान में एक विशाल अभिनन्दन-समारोह का विराट् आयोजन किया जा रहा था। उसकी सफलता के लिए गाँधीजी से आशीर्वाद माँगा गया। गाँधीजी ने लिखा—“शुद्ध सत्य तो यह है कि किसी भी शुभ काम में किसी के आशीर्वाद की आवश्यकता ही नहीं होती। क्योंकि शुभ काम स्वयं ही आशीर्वाद रूप होता है। उसी में उसकी सफलता है।”



यह सब किस लिए ?

१७

## शान्तचित्त रखने का अभ्यास

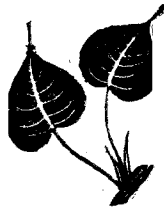
यूनान में डायोजिनोज नामक एक प्रसिद्ध तत्त्व - वेत्ता हो गया है। वह प्रतिदिन एक पत्थर की मूर्ति के सामने कुछ देर तक भीख माँगता था। एक दिन उसके एक मित्र ने उससे इस निरर्थक कार्य का रहस्य पूछा। डायोजिनीज ने कहा—“मैं इससे भीख माँग कर किसी से कुछ न मिलने पर शान्त - चित्त रखने का अभ्यास कर रहा हूँ।”

चित्त - वृत्तियों का संयम इच्छा मात्र अथवा कोरे ज्ञान से नहीं, निरन्तर अभ्यास से होता है।

### पर - निन्दा की उपेक्षा

यूनान के सुप्रसिद्ध मनीषी अरस्तू से एक दिन किसी ने कहा कि अमुक व्यक्ति ने आपकी अनुपस्थिति में आपको गाली दी है। अरस्तू ने हँस कर कहा—“वह मूर्ख चाहे, तो मेरी अनुपस्थिति में मुझे पीट भी सकता है।”

पीठ पीछे होने वाली निन्दा की ओर ध्यान देना व्यर्थ है



## बादशाह महमूद और दो उल्लू

एक बार बादशाह महमूद अपने वजीर के साथ जंगल में जा रहा था कि उसे एक पेड़ पर दो उल्लू दिखाई दिए। उसने वजीर से पूछा—बतलाओ, ये दोनों क्या बातें कर रहे हैं ?

वजीर दयालु था। बादशाह की लूटमार से सैंकड़ों परिवार तबाह हो गए थे—उजड़ गए थे। साहसी वजीर ने सोचा, यह अवसर है बादशाह को कुछ खरी और साफ बात सुनाने का। अतः उसने कुछ देर सोचकर कहा—

“हुज़ूर, इन दो उल्लुओं में एक लड़की का बाप है और दूसरा लड़के का। लड़के का बाप कह रहा है कि मैं दहेज में दस उजाड़ खण्ड लूँगा। लड़की का बाप कहता है कि क्या बड़ी बात है ? अगर बादशाह महमूद बना रहा, तो मैं दस क्या, बीस उजाड़ खण्ड आपकी नजर कर दूँगा।”

बादशाह सुनकर लज्जित हो गया। उस दिन से कहते हैं, कि उसने अत्याचार करना छोड़ दिया।



## मर कर भी अमर

भारतीय इतिहास की यह हजारों वर्ष पहले की घटना है। द्वारका का वैभव समाप्त हो चुका था, यादव जाति विलासिता की आग में जल चुकी थी। जीवन - भर जन - सेवा के क्षेत्र में सतत उद्योग करते - करते श्री कृष्ण भी जीवन के किनारे पर पहुँच रहे थे।

इसी समय की बात है कि श्री कृष्ण थके हुए जंगल में किसी पेड़ के सहारे पैर-पर-पैर रख कर लेटने की मुद्रा में आराम कर रहे थे। इतने में एक व्याध यानी शिकारी, उस जंगल में आ पहुँचा। रात्रि का समय था, कुछ-कुछ अंधेरा हो चला था। अतः उसे लगा कि कोई हिरन पेड़ के सहारे बैठा है। शिकारी जो ठहरा, बस उसने लक्ष्य साध कर तीर छोड़ ही तो दिया।

तीर श्री कृष्ण के पाँव में लगा, खून की धारा बहने लगी। शिकारी अपना शिकार पकड़ने के इरादे से नजदीक आया। परन्तु सामने प्रत्यक्ष नरश्रेष्ठ को जख्मी पाया, तो उसे बड़ा दुःख हुआ। अपने हाथों से इतना बड़ा पाप हुआ, यह सोचकर वह रोने लगा।

श्रीकृष्ण थोड़े ही समय में संसार से चल बसे। परन्तु, मरने से पहले उस व्याध से कहा— “हे व्याध ! डरना नहीं। मृत्यु के लिए कुछ-न-कुछ निमित्त मिलता ही है। बस, मेरी मृत्यु के लिए तू निमित्त बन गया।” ऐसा कह कर श्रीकृष्ण ने उसे आशीर्वाद दिया। क्या ऐसी स्थिति में इतना धैर्य रखा जा सकता है ? हाँ, जो रख सकता है, वही महापुरुष होता है।



## ज्ञान अनन्त है

कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि ऋषि भारद्वाज ने जीवन - भर तपस्या की । प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और भारद्वाज से पूछा—“यदि तुम्हें एक जन्म और मिले, तो तुम उस जन्म में क्या करोगे ?”

भारद्वाज ने उत्तर दिया—“मैं इस जन्म के समान ही तपस्या करता हुआ उस जन्म में भी वेदाध्ययन करूँगा ।”

देवाधिपति इन्द्र ने पुनः प्रश्न किया—“यदि तुम्हें पुनः एक जन्म और मिले. तो क्या करोगे ?”

भारद्वाज ने इस वार भी दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया—“मैं उस जन्म में भी तप करता हुआ वेदों का स्वाध्याय करूँगा ।”

इस उत्तर के साथ ही भारद्वाज के सामने तीन पर्वत प्रकट हुए । इन्द्र ने उन तीनों में से एक मुट्टी - भर कर कहा—  
“भारद्वाज ! अब तक वेदों को पढ़ कर जो कुछ ज्ञान तुमने प्राप्त किया है और दूसरे जन्मों में भी जो कुछ ज्ञान पाओगे, वह सब इन पर्वतों की तुलना में मुट्टी के समान है । वेद तो अनन्त हैं—  
“अनन्ता वै वेदाः ।”

यह कहानी सत्य - ज्ञान की अनन्तता पर कितना सुन्दर प्रकाश डालती है !

ज्ञान अनन्त है :

२१

## प्रीत के टाँके

स्वामी सहजानन्दजी गुजरात के एक महान् वैष्णव सन्त हो गए हैं। आत्माराम नामक उनका एक दर्जी शिष्य था। उसने उन्हें मेंट करने के लिए एक बहुत सुन्दर अँगरखा सीया। भावनगर के नरेश ने जब इस अँगरखे को देखा तो इतने प्रसन्न हुए कि ऐसा ही एक सुन्दर अँगरखा अपने लिए सी देने पर सौ रुपये सिलाई देने को तैयार हो गए।

इस पर दर्जी ने जो उत्तर दिया, वह इतिहस का एक अजर अमर सन्देश है। उसने कहा— “महाराज ! ऐसा दूसरा अँगरखा तो मुझे से सीते नहीं बनेगा। इस अँगरखे में तो प्रीत के टाँके पड़े हैं। ऐसे टाँके आपके अँगरखे में डालने के लिए मैं दूमरी प्रीत कहाँ से लाऊँ ?”

सच्ची कला का सर्जन इस प्रकार होता है। विना प्रेम - रस के कला, कला नहीं, एक प्रकार का फूहड़पन है।



## जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा

आमेर नरेश महाराजा मानसिंह युद्ध करने के लिए काबुल जा रहे थे। उनकी विराट् सेना विजय - पर - विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ रही थी। परन्तु ज्यों ही मार्ग में अटक (सिन्धु नदी) आई, तो सब - की - सब सेना विचार सूढ़ - सी तट पर खड़ी हो गई। बात यह हुई कि सेना के राजपूत सिपाही अटक नदी को पार करने से हिचक रहे थे। उनको यह भ्रम था कि मुसलमानी देश में जाने से कहीं हमारा धर्म ही न जाता रहे।

महाराजा मानसिंह को जब यह पता लगा, तो उन्होंने कहा—संसार की सब भूमि प्रभु गोपाल की है, भला इसमें अटक अर्थात् रुकावट कैसी? जिस के मन में अटक है, वह ही अटकता है, और कोई नहीं। अटक पार कर विदेश में जाने से धर्म नहीं जाता। धर्म का सम्बन्ध आत्मा की सच्ची श्रद्धा से है, किसी भूमि - विशेष से नहीं।

सबै भूमि गोपाल की, या में अटक कहाँ !

जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा !!



जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा :

२३



## असली धन

भगवान् बुद्ध एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित बैठे हुए थे । साहसा जोर-जोर से रोने - चिल्लाने की आवाज कानों में पड़ी । भगवान् बुद्ध ने नेत्र खोले । देखा, एक आदमी बदहवास चिल्लाता हुआ उनकी ओर भागा आ रहा है । पास आने पर भगवाम् ने पूछा—“भद्र ! इतने विकल क्यों हो ?”

“भगवान् मैं बर्बाद हो गया ! वह देखिए, डाकू मेरे परिवार को लूट रहे हैं । लाखों के रत्न आभूषण छीन लिए हैं”— आगन्तुक ने आर्त मुद्रा में हाथ जोड़ते हुए कहा ।

बुद्ध शीघ्रता से डाकूओं के पास पहुँचे । उन्हें उपदेश दिया । डाकू बुद्ध के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि लूटा हुआ सब धन धनिक को लौटा दिया और भविष्य में डाका डालने का परित्याग कर दिया ।

बुद्ध ने अब धनिक से कहा— “तुम इसी धन के लिए इतने विकल हो रहे थे । यह धन तो आज है, कल नहीं । यह एक दिन कमाया जाता है, और खोने के बाद एक दिन फिर कमाया जा सकता है । परन्तु तुम्हारा जो अनमोल सच्चा धन है, वह दिन-रात प्रतिक्षण लुटा जा रहा है, तुम उसके लिए तनिक भी विकल नहीं होते !”

“देव ! मेरा वह कौन - सा धन है, जो दिन - रात प्रतिक्षण लुट रहा है, परन्तु जिसका मुझे पता भी नहीं है ?”

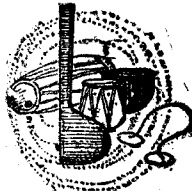
“वत्स ! वह तेरा आत्म - धन है । सत्य और अहिंसा आदि निज गुण ही वस्तुतः मनुष्य की असली संपत्ति है । वह एक बार लुट जाने के बाद दुबारा प्राप्त होनी सहज नहीं है । विषय-वासनाओं के द्वारा वह सम्पत्ति प्रतिक्षण लूटी जा रही है और तुझे उसका तनिक भी पश्चात्ताप नहीं है ।”

धनिक अन्तर् में जाग उठा । कहते हैं, उसने अपनी सब सम्पत्ति परोपकार के पवित्र - पथ पर सहर्ष समर्पित कर दी ।

## हनुमान की आदर्श भक्ति

एक बार हनुमानजी से किसी ने पूछा— ‘आप इतने बड़े बलवान भीमकाय हैं, फिर भी आपने रावण का नाश क्यों नहीं कर दिया ?

हनुमानजी ने कहा—‘वह राक्षसाधम मेरे सामने कुछ भी चीज न था, परन्तु यदि मैं रावण को मार डालता, तो राम की कीर्ति नष्ट हो जाती ।



## सुरक्षित कोष

महाकवि नरहरि, सम्राट् अकबर के दरबार में ख्याति प्राप्त कवि थे। उन्होंने दिल्ली से एक वार अपने पुत्र हरिनाथ के पास विपुल धनराशि भेजी। हरिनाथ ने वह सारा धन गरीब ब्राह्मणों को दान कर दिया।

कुछ समय बाद जब नरहरि घर लौटे, तो पूछा— “बेटा, मेरा भेजा हुआ धन तुमने कहाँ रखा है?” हरिनाथ ने कहा— “पिताजी, आप निश्चिन्त रहें, मैंने उसे पूर्णतया सुरक्षित कोष में जमा कर दिया है, सायंकाल दिखाऊँगा।” नरहरि चुप हो गए।

इधर हरिनाथ ने उन सब ब्राह्मणों से कहला भेजा कि आप लोग सायंकाल वह सब द्रव्य, वस्त्र आदि, जो मैंने आपको दान दिए हैं, लेकर आएँ। सायंकाल ब्राह्मणों के अपनी गढ़ी पर उपस्थित होने पर हरिनाथ ने नरहरि से कहा— “पिताजी, चलिए, अपनी संपत्ति देख लीजिए। मैंने उसे कितने अच्छे सुरक्षित कोष में जमा कर रखा है?”

नरहरि ने यह देखा तो अवाक् रह गए। ब्राह्मणों को विदा करके उन्होंने हरिनाथ से कहा— “बेटा, किया तो तूने खूब। जन्म-जन्मान्तर के लिए संपत्ति को सुरक्षित रखने का इससे बढ़कर और कोई सुन्दर एवं सुरक्षित तरीका नहीं हो सकता, परन्तु यह सब यदि अपनी कमाई से करते, तो और अधिक अच्छा होता।

## मनुष्य नहीं, पशु

“तबि का एक पैसा या एक पाव - भर आटा मिल जाता, बाबूजी ! भूखी आत्मा है । आप आनन्द में रहें ।”

एक भिखारी बड़ी देर से दरवाजे के सामने चिल्ला रहा था । मकान - मालिक अपनी बैठक में बैठा हुआ हुक्का पी रहा था । झल्ला कर बोला— “एक वार कह दिया, दो वार कह दिया—कि यहाँ कोई आदमी नहीं है । मानेगा नहीं वे ? चिल्ला-चिल्ला कर नाहक तंग कर रहा है ।”

भिखारी को अब मजाक सूझा । निराश तो हो ही गया था । सोचा, जाते - जाते तसल्ली के लिए एकाध चटकी ही क्यों न ले लूँ ? बोला— “हुजूर को तो मैं आदमी समझ कर ही मांग रहा था । मुझे क्या पता था कि आप आदमी नहीं, पशु हैं ।” इतना कह कर, भिखारी नौ - दो ग्यारह हो गया ।



## जैसा रेखा, वैसी घोड़ी

एक सामुद्रिक शास्त्री ने घोषित किया कि “जिसके दाहिने पैर में ऊर्ध्वरेखा होती है, उसे सवारी के लिए घोड़ी मिलती है।”

श्रोताओं में से एक ने अपना पैर देखा, लेकिन ऊर्ध्वरेखा नहीं थी। तब उसने लोहे के एक चिमटे को गरम कर दाहिने पैर के तलवे में रेखा उपाड़ ली। घाव जरा गहर हो गया, भरा नहीं, सड़ गया। फलतः उ विस्तर पर पड़ जाना पड़ा और पैर हमेशा के लिए बेकार हो गया। अब उसे लकड़ी की घोड़ी के सहारे चलना पड़ता था।

एक दिन मार्ग में पहले वाले सामुद्रिक शास्त्री से भेंट हो गई। उसने पूछा—“तुम्हारे कथनानुसार मैंने अपने पैर में ऊर्ध्वरेखा पैदा की, लेकिन मुझे सवारी के लिए घोड़ी तो नहीं मिली।”

सामुद्रिक शास्त्री ने कहा—“हमारा शास्त्र कभी भ्रूठ निकलता ही नहीं। यदि तुम्हारी ऊर्ध्व - रेखा असली होती, तो असली-सच्ची घोड़ी मिलती। लेकिन, तुमने तो रेखा हाथ से बनाई है, अतः तुम्हें हाथ की बनी लकड़ी की घोड़ी मिली है। असली नहीं, नकली मिली, घोड़ी मिली तो सही। जैसी रेखा, वैसी घोड़ी।



## कंजूसों का सरदार

एक यहूदी की दुकान पर एक स्काच माल खरीदने गया । स्काच को पहले ही सावधान कर दिया गया था कि यहूदी दुगुने दाम माँगा करता है, इसलिए मोल - तोल ठीक - ठीक करना, ठगे न जाना ।

स्काच साहब सावधान तो थे ही । एक छाते की कीमत पूछी । यहूदी ने कहा—दश शिलिंग । इस पर स्काच साहब ने फरमाया, यह तो बहुत ज्यादा है, हम तो पाँच शिलिंग देंगे । यहूदी ने कहा—पाँच तो नहीं, पर तुम सज्जन मालूम होते हो, इसलिए छाता आठ शिलिंग में दे सकता हूँ । इन्होंने तो पहले से ही गणित का मार्ग स्वीकार कर लिया था । इनसे कहा गया था कि यहूदी दूना दाम माँगा करता है । इसलिए वह जितना माँगता था, स्काच साहब उससे आधा करते थे । जब यहूदी पाँच शिलिंग पर पहुँचा, तब तो स्काच महाशय ढाई शिलिंग पर उत्तर चुके थे । यहूदी धीरज खो बैठा और उखड़ कर बोला—“तुम तो पूरे मक्खीचूस मालूम होते हो । ले जाओ, यह छाता मुफ्त में ।”

स्काच साहब विचार में पड़ गए । मामला टेढ़ा था, पर फिर भी गणित ने साथ दिया । भटपट उन्होंने फैसला कर लिया और बोले,—“तो अच्छा एक नहीं, दो दे दो ।” सुनने वाले लोग खिल-खिला उठे । पर स्काच को सन्तोष हो गया कि उन्होंने अपनी जाति की कंजूसी का सिक्का थोताओं पर जमा लिया ।

कंजूसों का सरदार :

२६

## जो मिले, उसी से सीखिए

मनु बहन गाँधीजी से गोता पढ़ती थी। परन्तु, उसका उच्चारण अशुद्ध रहता था। गाँधीजी ने पूछा—उच्चारण इतना अशुद्ध क्यों रहता है? मनु बहन ने भिभकते स्वर में उत्तर दिया—और त्रिषयों में भले हजारों गुरु हों, लेकिन गीता का गुरु आपके सिवा दूसरा न हो, इसलिए मैं अपने आप ही सच्चे - भूठे उच्चारण और अर्थ करती रहती हूँ। दूसरे किसी की मदद लेकर आगे नहीं बढ़ती।”

इस बात से गाँधीजी को बहुत दुःख हुआ। वे कहने लगे। तुम्हारी इस इच्छा में भूठा मोह छिपा है। अच्छी चीज सीखने में हजारों क्या, लाखों गुरु भी हम क्यों न करें? अच्छी बात को एक छोटे बच्चे के पास से भी हम क्यों न सीखें? अच्छी चीज सीखने में लज्जा कैसी? किसी बड़े से अच्छी बात सीखने की प्रतीक्षा में पास के किसी दूसरे साथी से कुछ न सीखना भी एक प्रकार का पाप है।

## चरखे का संगीत

एक त्रार रात को रेडियो पर बहुत ही सुन्दर कार्यक्रम आने वाला था। सब लोग सुनने की उत्कंठा में थे। गाँधीजी की पोती मनु बहन ने आग्रह करते हुए कहा—“बापू, आज तो आप भी रेडियो का कार्यक्रम सुनिए।”

बापू ने कहा—‘उसमें क्या सुनना है? इन रेडियो के भजनों को सुनने की अपेक्षा, तो हम चरखे का संगीत ही क्यों न सुनें?’



## विरोधी पर विजय कैसे ?

एक बार सम्राट् कुमारपाल की राज - सभा में बड़े - बड़े विद्वान् यथास्थान सिंहासनों पर बैठे हुए थे और एक गंभीर दार्शनिक चर्चा चल रही थी। इतने में आचार्य हेमचन्द्र भी चर्चा में भाग लेने के लिए उपस्थित हुए।

आचार्यजी को आते देखकर एक ईर्ष्यालु पण्डित ने मजाक उड़ाते हुए कहा—अच्छा हेम ग्वाला भी कंधे पर कमली और हाथ में दण्ड लिए आ गया—

“आगतो हेमगोपालो दण्ड - कम्बलमुद्रहन् ।”

आचार्य हेमचन्द्र बड़ी ही गंभीर प्रकृति के सन्त थे। भरी सभा में अपमान होने पर भी उत्तेजित न हुए। उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—आपने ठीक कहा है। अनेकान्तवादी जैन - दर्शन के विराट् मार्ग में एकान्तवादी षड्दर्शन रूप पशुओं को चराने वाला मैं ग्वाला ही तो हूँ, इसमें असत्य क्या ?

“षड् - दर्शन - पशु प्रायाश्चायन् जैनवाटके ।”

एक मधुर मुस्कराहट के साथ की गई गहरी चोट ने विरोधी को चरणों में ला गिराया। सारी सभा में आचार्यजी का जय-जयकार गूँज उठा।



विरोधी पर विजय कैसे ?



## मूर्खों के त्याग का आदर्श

एक बूढ़े जन - सेवक की बात है। वह रोज लोगों की सेवा करता था, लोगों का मँल धोता था, गली-मुहल्ले की सफाई करता था, उन्हें रोटी देता था, उन्हें ज्ञान देता था। किन्तु स्वयं थोड़े-से अन्न - वस्त्र पर निर्वाह करता था। लोगों ने उसकी बहुत तारीफ की।

एक मूर्ख ने कहा— “इसमें तारीफ की कौन - सी बात है ? बुड्ढा पूरे कपड़े पहनता है।”

बुड्ढे सेवक ने सुन लिया और कपड़े फेंक दिए, बस एक लंगोटी लगा ली।”

दूसरे मूर्ख ने कहा—“ओ हो, इसमें क्या है ? बुड्ढा दूध, फल तो काफी खा जाता है।”

बुड्ढे ने दूध भी छोड़ दिया, फल भी छोड़ दिए। फिर एक तीसरे मूर्ख ने कहा—“अरे, यह तों रोटी खाता है।”

बुड्ढे ने कच्चे चने चबाना शुरू कर दिया।

चौथे मूर्ख ने कहा—“आखिर खाता तो है।

बुड्ढे ने खाना भी छोड़ दिया।

पाँचवें मूर्ख ने कहा—“पानी तो पीता है।”

इस पर पानी को भी अन्तिम नमस्कार कर बुड्ढा एक रात को राम - राम करते - करते मर गया। सुबह हुई तो न कोई सेवा करने वाला, न रोटी देने वाला। लोग खूब रोये। बुड्ढे की तारीफ की। किन्तु, किसी ने यह नहीं कहा कि हम ने ही तो बुड्ढे को मार दिया।

## अतीत की कल्पना का आधार

कलकत्ता में अधिकतर मोटर - ड्राइवर सिक्ख हैं। एक वार वहाँ गुरु नानकदेव का जुलूस बाजारों से गुजर रहा था। किसी अँग्रेज ने देखा, तो उसने एक बंगाली से पूछा— “यह उत्सव कैसा है, किसका है ?”

बंगाली ने जवाब दिया—“यह ड्राइवरों के मास्टर का जुलूस है। सुना है, वह मोटर चलाने में बड़ा होशियार था।”

जवाब देने वाले का क्या अपराध ? वह सिक्ख मोटर ड्राइवरों की अधिकता और उनके वर्तमान व्यवहार के परे कैसे जाने कि सिक्ख जाति में भी बड़े - बड़े त्यागी, तपस्वी, शूर-वीर, राजा - महाराजा हुए हैं, और हैं ? मोटर - ड्राइवर सिक्खों के वर्तमान व्यवहार ने गुरु नानकदेव को भी मोटर - ड्राइवर बना दिया ! अतीत की महत्ता को आंकने के लिए वर्तमान की महत्ता अतीव अपेक्षित है, इस सत्य-तथ्य को भूलिए नहीं ।



## जो है उसी का उपयोग करो

जर्मन सेनापति रोमेल, अपने समय का एक विलक्षण प्रतिभाशाली वीर पुरुष था। गत महायुद्ध में वह अफ्रीका के रणक्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहा था। एक वार ऐसा हुआ कि रेगिस्तान में उसके पास की युद्ध - सामग्री समाप्त हो गई। और, उधर रात में सुसज्जित अंग्रेजों की सेना ने उसकी सेना पर अचानक आक्रमण कर दिया। रोमेल के संगी - साथी एकदम घबरा उठे। उन्होंने कहा—“हमारे पास कुछ तोपें तो हैं; परन्तु गोले नहीं हैं।” रोमेल ने धैर्य पूर्वक कहा—“गोले न सही, बालू तो है, उसी का उपयोग करो।”

रोमेल की आज्ञा होते ही जर्मन सैनिक तोपों में बालू भरकर बालू के टीलों पर दनादन दागने लगे। और, उसने टैंक और लोरियों को कुछ मीलों के घेरे में लगातार चक्कर लगाने की आज्ञा भी तुरन्त दे दी। परिणाम यह हुआ कि तोपों की गड़गड़ाहट सुन कर और अपरम्पार धूल उड़ती देखकर अंग्रेजों ने समझ लिया कि जर्मनी की विशाल सेना युद्ध के लिए आतुर हो कर दौड़ी आ रही है। वे वायुयानों से भी वास्तविकता की जाँच नहीं कर सके। क्योंकि सारा आकाश धूल से भरा था। आखिर, उन्हें मैदान छोड़ कर भागना ही पड़ा। इसे कहते हैं, समय की चातुरी।



## औरंगजेब की हृदय - हीनता

मुगल सम्राट् औरंगजेब बड़ा ही कट्टरपंथी मुसलमान था । इस्लाम - धर्म में गाना - बजाना मना है, अतः जब वह बादशाह बना, तो उसने एक शाही फरमान निकाल कर गाना - बजाना बिल्कुल बन्द कर दिया ।

गवैये भूखों मरने लगे । उन्होंने एक सभा में विचार - विमर्श किया और उसके निर्णय के अनुसार एक दिन जनाजा उठाये हुए रोते - पीटते बादशाह के महल के नीचे से निकले ।

बादशाह ने झरोखे में से झाँक कर देखा, और पूछा—“क्यों क्या बात है ? रोते क्यों हो ? यह कौन मर गया है ?”

गायकों ने कहा—“हुज़ूर ! गान - विद्या मर गई, उसे दफनाने जा रहे हैं ।” हृदय - हीन औरंगजेब ने कहा— ‘बहुत अच्छा हुआ । जरा गहरा गढ़ा खोद कर दफन करना, ताकि फिर कभी निकल कर बाहर न आ सके ।’



## क्षमा की विजय

एक रात महर्षि विश्वामित्र ने सोचा—“वशिष्ठ मुझ से शत्रुता रखता है। वह मुझे हर बात में नीचा दिखाना चाहता है। जब तक वह रहेगा, मेरी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ सकती। क्योंकि वह तप में मेरे से बहुत आगे बढ़ा हुआ है।”

यह क्या सोचा, क्रोध की ज्वाला मन के कण - कण में भड़क उठी। हाथ में तलवार ली, और वशिष्ठजी की कुटिया के पीछे दुबक कर खड़े हो गए। अब एकमात्र यही प्रतीक्षा थी कि “वे कुटिया से बाहर आएँ, कि उनका सिर धड़ से अलगकर दूँ।”

उधर अरुन्धती वशिष्ठजी से वार्तालाप कर रही थी। अरुन्धती ने कहा—“यह पूर्णचन्द्र की चाँदनी जैसी उज्ज्वल और मन को आह्लाद करने वाली है, काश ! ऐसी ही किसी मनुष्य की कीर्ति होती ?”

वशिष्ठजी ने कहा—“हाँ, आजकल तो श्री विश्वामित्रजी की कीर्ति भी ऐसी है। उन जैसा सदाचारी, यशस्वी संत आज दूसरा कौन है ? कोई भी तो नहीं।”

यह सुनना था कि विश्वामित्रजी तो पानी - पानी हो गए। उन्हें क्या पता था कि जिसे वे अपना शत्रु समझते हैं, प्रतिष्ठा प्राप्त में बीच का रोड़ा समझते हैं, वह परोक्ष में उसकी कितने सरल भाव से, कितनी बड़ी प्रशंसा कर रहा है ?

परोक्ष प्रशंसा ने विश्वामित्र के हृदय को पिघला दिया। वे तलवार फेंक कर वशिष्ठजी के चरण - कमलों में आ गिरे।



## प्रभु - सेवक कौन ?

भक्त आबूबन अपने युग के बड़े ही सहृदय और सच्चे पुरुष थे। वे सब को समान दृष्टि से देखते और सब की सेवा का सस्नेह लाभ लेते। एक दिन की बात है कि रात को सोते हुए आधी रात के समय जब एकाएक उनकी आँखें खुली, तो उन्होंने देखा कि सारा घर प्रकाश से जगमगा रहा है और एक देवदूत सुनहरी पुस्तक में कुछ लिख रहा है।

“आप इस पुस्तक में क्या लिख रहे हैं ?”—आबूबन ने पूछा।

“जो लोग ईश्वर को हृदय ने प्यार करते हैं, मैं उन लोगों के नाम इस पुस्तक में लिखता हूँ”—देवदूत ने धीरे से उत्तर दिया।

“क्या मेरा नाम भी लिखा है ?

‘नहीं।’

“नहीं लिखा, तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु, इतना लिख लीजिए कि—आबूबन सब मनुष्यों को हृदय से प्यार करता है।”

यह सुनकर देवदूत अदृश्य हो गया। अगली रात को जब वह पुनः लौट कर आया और वह पुस्तक आबूबन की आँखों के सामने की, तो आबूबन ने देखा—जितने भी ईश्वर - भक्तों के नाम उस पुस्तक में लिखे थे, उनमें सबसे पहले आबूबन का ही नाम लिखा था।

उक्त कथा का संदेश है—“जन - सेवक ही सच्चा प्रभु-सेवक है। जनता से प्यार किए बिना, प्रभु का प्यार नहीं मिलता।



## बुढ़िया का अहंकार

एक बुढ़िया घर में अकेली थी, उसे पान खाने का बड़ा शौक था। किन्तु, आस - पास के पड़ोसियों की इतनी अधिक उदासीनता कि कोई उसे यह न कहता कि वह पान खाती है।

बुढ़िया ने लोगों की इस बेरुखी से अधीर होकर एक दिन अपने घर को आग लगा दी और शोर मचा दिया—“दौड़ो, दौड़ो। घर में आग लग गई है।”

पड़ोसी दौड़े आए। कुछ घर का सामान बाहर निकलवाने लगे और कुछ आग बुझाने के लिए पानी लाने में व्यस्त हो गए।

बुढ़िया ने सामान निकालने वालों में से एक से कहा—“बेटा जरा मेरा पानदान भी निकाल देना।” इस पर पास खड़े हुए एक आदमी ने टोका—“ओ हो ! बुढ़िया, तू पान भी खाती है ?”

इस पर बुढ़िया ने प्रश्नकर्ता को गालियाँ और उपालम्भ देते हुए कहा—“तुमने यही बात पहले पूछ ली होती, तो मैं घर को आग ही क्यों लगाती ?”



## अन्धानुकरण !

एक शहर में राजा की सवारी निकल रही थी। राज-कर्मचारियों ने देखा कि जुलूस के मार्ग में किसी बच्चे ने टट्टी कर दी है। राजा की सवारी नजदीक आ चुकी थी। अतः महत्तर को बुलवाकर उठवाने का समय नहीं रहा था। तुरन्त, एक दूरन्देश ने वहीं खड़े हुए व्यक्तियों से फूल लेकर उस पर डाल दिए।

राजा की सवारी निर्विघ्न गुजर जाने के बाद भीड़ के लोगों में से कुछ ने कौतूहलवश जमीन पर फूल चढ़ाने का कारण पूछा, तो किसी मसखरे ने कह दिया—“पृथ्वी से गंदी देवी प्रकट हुई है।”

इतना सुनना था कि हिए के अंधों ने फूल चढ़ाने शुरू कर दिए। और, एक अवसरवादी मजहबी दीवानगी के नाम पर आँख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों से चन्दा उगाह कर, उसी स्थान पर मन्दिर बनवाकर महन्त बन बैठा !





## बुद्धि का चमत्कार

एक विद्यार्थी ने अपने युग के एक महान् ख्याति प्राप्त चित्रकार से पूछा— “महाशय ! आप रंग किस चीज से मिलाते हैं ? आपके रंग बड़े ही सुन्दर होते हैं ।

चित्रकार से सहज भाव में उत्तर मिला— “बुद्धि से ।”

वस्तुतः जीवन-क्षेत्र में प्रत्येक काम करने से पहले मनुष्य को बुद्धि की अपेक्षा है । बुद्धि ही कृति में सुन्दरता लाती है ।

## भारत का अपमान

एक भारतीय युवक विद्यार्थी यूरोप के किसी पुस्तकालय में पहले - पहल गया और वहाँ किसी पुस्तक से एक सुन्दर चित्र निकाल कर ले आया ।

दूसरे दिन ही बोर्ड लगा दिया गया— “भारतीयों का प्रवेश निषिद्ध है ।” एक मूर्ख लालची की अप्रामाणिकता से समस्त देश का गौरव मिट्टी में मिल गया ।



## कोठियों के निर्माता

एक था, सेठ । उसके थे, दो बेटे । सेठ ने दोनों बेटों को उपदेश दिया कि तुम दुनिया - भर में अपनी कोठियाँ बनाओ । अब एक लड़का तो सचमुच जगह - जगह कोठियाँ बनाने लगा । आखिर कहाँ तक कोठियाँ बनाता ? वह थक गया । और, उसके धन ने भी जबाब दे दिया ।

दूसरा लड़का अधिक बुद्धिमान था । उसने कोठियाँ बनाने के बजाय जगह-जगह मित्र बनाने आरम्भ किए । इसमें वह जरा भी नहीं थका और अपने भाई से बहुत आगे निकल गया । क्योंकि उसके लिए मित्रों की कोठियों के द्वार हमेशा खुले रहते थे ।



## सत्य को हँसी का डर नहीं

एक बार किसी विशेष प्रसंग पर चर्चा करते हुए श्री घन-श्यामदास बिड़ला ने गाँधीजी से पूछा— “आपने ऐसा कौन-सा काम किया है, जिसे साहस की दृष्टि से आप अपने जीवन में ऊँचे-से-ऊँचा स्थान दे सकें ?”

“इस दृष्टि से तो मैंने कभी नहीं विचारा”—गाँधीजी ने कहा। किन्तु, मैं समझता हूँ बारदोली सत्याग्रह स्थगित करके मैंने बहुत बड़े साहस का परिचय दिया। चौबीस घंटे पहले सरकार को चुनौती देकर ललकार करना और फिर अचानक सत्याग्रह को स्थगित करना, यह अपने आपको बेहद हास्यास्पद बनाना था, किन्तु तब में तनिक भी न भिभका। जो सत्य था, वही मेरा राजमार्ग था और इसीलिए मेरी अपनी हँसी होगी, इस विचार ने मुझे कभी भयभीत नहीं किया। मेरे जीवन के बहुत बड़े साहसिक कामों में यह एक था, ऐसा मैं मान सकता हूँ।”

गांधीजी के उत्तर का मर्म ऊपर से नहीं, गहराई में जा कर समझना चाहिए। आगे बढ़ना या पीछे हटना, गांधीजी की दृष्टि में इसका कोई मूल्य नहीं, मूल्य है एकमात्र सत्य का। सत्य के लिए कभी पीछे भी हटा जा सकता है, फिर भले ही, कितनी ही वयों न हँसी हो, मजाक हो !

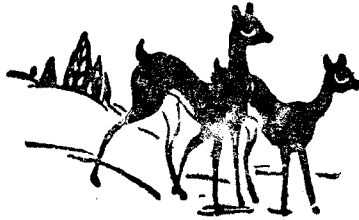


## बुरा भागे या भला ?

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने एक बार गांधीजी से कहा—  
“महात्माजी, आप के इर्द - गिर्द के लोगों में कितनेक बुरे आदमी भी आ गए हैं।”

इस पर गांधीजी ने हँसते हुए कहा—“तो इसका मुझे क्या डर है ? मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता। जो मुझे धोखा देने में अपने को दक्ष समझते हैं, वे स्वयं अपने आपको धोखा देते हैं। मैं तो शैतान के पास भी रहने को तैयार हूँ, किन्तु शैतान मेरे पास कैसे रहेगा ? जो बुरे हैं, वे स्वयं मुझे त्याग देंगे ?”

हुआ भी ऐसा ही। कितने ही लोग गांधीजी के साथ हुए, कुछ देर चले, अपनी दुर्बलताओं से अन्त में इधर - उधर भटक गए। किन्तु, गांधीजी अपने पथ पर बढ़ते ही गए। बुरे लोगों से बचने की धुन में भागते फिरने की आवश्यकता नहीं। खुद में सचाई चाहिए, या तो बुरे भले बन जाएँगे, या एक दिन वे खुद ही भाग जायेंगे !



बुरा भागे या भला ? :

४३

## क्या गधा भी इतना सुन्दर हो सकता है ?

सुप्रसिद्ध कलाकार श्री नन्दबाबू से एक नवागन्तुक छात्र ने पूछा—“वह किस विषय को लेकर चित्रांकन करे ?” नन्दबाबू तुरन्त बोले—“जो भी विषय तुम्हारे नयनों के सामने आए, उसी का अंकन कर सकते हो, यथा—पुष्प, पत्र, गधा आदि।”

नवागत छात्र गुरुजी की तरफ जरा विस्मय-दृष्टि से निहारने लगा। मानो, वे कुछ परिहास कर रहें हों ?

शिल्प - गुरु ने उसके मनोगत भाव को भांप लिया। शीघ्र ही अपनी जेब से एक खाली कागज और पेंसिल, जो कि उनकी जेब में सदा मौजूद रहते थे, निकाल कर पास ही खेत में चरते हुए एक गधे का जीवित रेखांकन (स्केच) कर बताया। छात्र उस चित्रांकन को ध्यान से निहारता रहा। अंकन पूरा होते ही वह भावावेश में बोल उठा—“गुरुजी, क्या गधा भी इतना सुन्दर हो सकता है ?”

“निःसन्देह, यदि किसी के पास उसके सौन्दर्य को अवलोकन करने की गहरी दृष्टि हो !” गुरु ने उत्तर दिया।



## कुशासन से बाध अच्छा !

चीन के महान् सन्त कनफ्यूशियस अपने विराट् देश की लम्बी यात्रा कर रहे थे। एक बार एक सूने और भयावने जंगल में उन्होंने एक स्त्री की रोने की आवाज सुनी। पास जाकर देखने से पता चलता है कि उस स्त्री के समुर, पति और सन्तान को बाध ने अपना भोजन बना लिया है।

कनफ्यूशियस ने कहा— “तुम कहीं और क्यों नहीं चली जाती ?” उस स्त्री ने छूटते ही उत्तर दिया—“नहीं, यहाँ और जो हो, अत्याचारी राज्य की हुकूमत तो नहीं है।”

## सार तो निकाल लिया

महात्मा गांधीजी एक वार जब लन्दन जा रहे थे, मार्ग में एक अंग्रेज से उनका परिचय हो गया। वह अंग्रेज कुछ बदमिजाज का था। बात - बात पर गाँधीजी को खरी - खोटी सुनाया करता था।

एक दिन उसने एक व्यंग कविता लिखकर गांधीजी के पास भेजी। महात्माजी ने उस कविता को तो बिना पढ़े ही रद्दी की टोकरी में डाल दिया और उसमें लगी पिन को निकाल कर डिबिया में रख लिया। इस पर उस ने कहा— “गांधीजी उसमें कुछ सार भी है, पढ़कर तो देखिए।” महात्माजी ने हँस कर कहा— “सार तो मैंने निकाल कर डिबिया में रख लिया है।”

## अध्ययन बड़ा या अनुभव ?

एक राजकुमार जो वर्षों के लम्बे अभ्यास के बाद ज्योतिष शास्त्र की विद्या में पारंगत हो चुका था, अपने पिता के सामने परीक्षा देने बैठा !—पिता ने मुट्टी में कुछ दबा रखा था, पूछा—  
“बताओ, मेरी मुट्टी में क्या है ?”

राजकुमार ने लम्बी गणित करने के बाद उत्तर दिया—  
“आपकी मुट्टी में जो चीज है वह गोलाकार है और उसमें पत्थर जड़ा हुआ है।”

“हाँ, ठीक है, पर बताइए क्या चीज है ?”—राजा ने चीज का नाम जानना चाहा।

राजकुमार ने बहुत सोचा, कुछ ध्यान में न आया। ज्योतिष-शास्त्र इतनी दूर तक तो ले आया था, परन्तु आगे तो अपने अनुभव और चिन्तन को ही दौड़ लगानी थी ! और वह राजकुमार में थी नहीं। बोला—“बताऊँ, चक्की का पाट है।”

अँगूठी को चक्की का पाट बताने वाला राजकुमार क्यों हँसी का पात्र हुआ ? उसमें यह तर्क बुद्धि न थी कि चक्की का पाट मुट्टी में बन्द कैसे हो सकता है ? शास्त्र अध्ययन के साथ प्रतिभा का स्वतन्त्र विकास भी आवश्यक है।

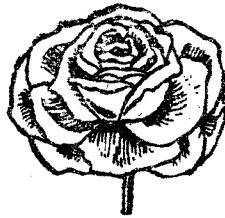


## शिवाजी की नैतिक पवित्रता

शिवाजी महाराज ने धनघोर युद्ध के बाद मुगल सेना से एक किला जीता। किलेदार भाग गया, किन्तु उसकी लड़की पकड़ी गई। लड़की बहुत सुन्दर थी। जब सेनापति ने लड़की को शिवाजी की सेवा में उपस्थित किया, तो वह डरी हुई थी कि—“मुझे अब दासी होना होगा। अब मैं अपने माता-पिता का मुँह कभी भी न देख सकूँगी। पता नहीं, मेरे साथ कैसा व्यवहार होगा ?”

परन्तु, शिवाजी ने लड़की को देखते ही भरे दरबार में कहा—“अहा, कैसी सुन्दर लड़की है। यदि यह मेरी माँ होती, तो मैं ऐसा कुरूप कदापि नहीं होता।”

लड़की को बहुत कुछ धनराशि दे कर कहा—“बेटी ! लो, यह तुम्हारी शादी का दहेज है। इसे लेकर अपने पिता के पास जाओ, वह योग्य वर ढूँढ़ कर तुम्हारी शादी कर देंगे। जैसे तुम अपने पिता की पत्नी हो, वैसे ही मेरी भी पत्नी हो।”



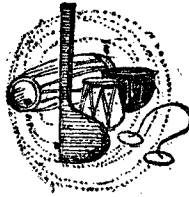


## कुत्ते की जगह प्रेसीडेन्ट

एक बार मिस्टर और मिसेज कूलिज दोनों ही ह्वाइट-हाउस से बाहर गए हुए थे। ह्वाइट-हाउस में नया रंग - रोगन चल रहा था। अचानक तार मिला कि प्रेसीडेण्ट कूलिज समय से पूर्व ही प्रवास से लौट रहे हैं।

उस समय ह्वाइट - हाउस में सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। जल्द व्यवस्था की गई। नौकरों ने लाइब्रेरी की पुस्तकें समेट कर रखी। लेकिन प्रेसीडेण्ट का एक कुत्ता कूद - फांद कर फिर अस्त-व्यस्त कर गया। नौकर को क्रोध आ गया। उसने एक बड़ी पुस्तक उठा कर भागते हुए कुत्ते पर फेंकी। कुत्ता तो नदारद था। लेकिन परदे के पीछे से एक हलकी-सी आह निकली और थोड़ी देर में देखा, प्रेसीडेण्ट साहब माथा घिसते हुए बाहर निकले। नौकरों को उन्होंने केवल यही कहा—“बहुत गरमी है यहाँ?” न डांटा, न फटकारा, न नौकरी से बरखास्त किया।

सभ्यतापूर्ण व्यवहार का ध्यान, प्रेसीडेण्ट को अपने नौकरों से बर्ताव करते हुए भी रखना पड़ता है।



## सिर का मोल

सम्राट् अशोक भिक्षुओं की वन्दना किया करते थे। उनके मन्त्री यश को यह बात अच्छी न लगी। उसने अशोक से कहा— “महाराज, इन बुद्ध - मत के साधुओं में सब जाति के लोग होते हैं। अपने अभिषिक्त सिर को इनके आगे भुकाना ठीक नहीं है।” अशोक ने यश को उस समय कुछ उत्तर नहीं दिया। परन्तु थोड़े दिन बाद बकरे - भेड़ आदि मवेशी प्राणियों के सिर मंगाकर उनको बेचने के लिए लोगों को भेजा। यश को मृत मनुष्य का सिर देकर बेच लाने को कहा। बकरे आदि के सिर बिक गए। कुछ पैसा भी मिला। पर, मनुष्य का सिर किसी ने भी नहीं लिया। तब अशोक ने यश से कहा कि इस मनुष्य के सिर को बिना दाम लिए ही किसी को दे दो। पर, उस सिर को बिना दाम के भी किसी ने नहीं लिया। लेने की बात तो दूर, जहाँ यश सिर ले जाता, लोग उससे घृणा करते। उसे कोई अपने पास में भी खड़ा नहीं होने देता। बाद में यश ने अशोक से कहा कि मुफ्त में भी इस सिर का लेने वाला कोई नहीं है।

सम्राट् अशोक ने पूछा— “इसे लोग मुफ्त भी क्यों नहीं लेते ?” यश ने कहा— “महाराज, इस सिर से घृणा करते हैं।” अशोक ने फिर पूछा— “क्या इसी सिर से लोग घृणा करते हैं, या सब मनुष्यों के सिर से घृणा करते हैं ?” यश ने कहा— “महाराज, किसी भी आदमी का सिर काट कर ले जाया जाए, लोग उससे घृणा करेंगे।”

सिर का मोल :

४६

सम्राट् ने मुस्कराते हुए फिर पूछा—“क्या मेरे सिर का भी यही हाल होगा ?” यश उत्तर न दे सका। उसे डर लगा कि सच्चा उत्तर देने पर कहीं सम्राट् को बुरा न लगे। पर बाद में जब अशोक ने उसे अभयदान दिया, तो उसने कहा—“महाराज, आपके सिर से भी लोग इसी तरह घृणा करेंगे।” तब सम्राट् ने कहा—“जो सिर इस तरह का घृणापात्र है, वह यदि भिक्षुओं के आगे भुकता है, तो तुमको बुरा क्यों लगा ?”

## सत्य अनन्त है

एक बार तथागत बुद्ध ने अपनी मुट्टी में कुछ सूखी पत्तियाँ लेकर अपने प्रिय शिष्य आनन्द से पूछा—“मेरे हाथों की पत्तियों के अतिरिक्त कहीं और भी पत्तियाँ हैं ?”

आनन्द ने उत्तर दिया—“पतझड़ की पत्तियाँ सभी तरफ गिर रही हैं। और, वे इतनी अधिक हैं कि उनकी गिनती ही नहीं हो सकती।

तब बुद्ध ने कहा—“इसी तरह मैंने भी तुम्हें मुट्टी - भर सत्य दिया है, परन्तु उसके अतिरिक्त और भी सत्य है, इतना अधिक कि उसकी गिनती नहीं हो सकती।”



## सास की सेवा

एक गाँव में माँ, बेटा और पतोहू (पुत्र-वधु) तीनों एक घर में रहते थे। पतोहू जरा खचड़े स्वभाव की थी, सास को दुःखी रखती। पति, स्त्री को डाँट-डाँट कर बेहया न बनाकर, कुशलता से समझाने के किसी अच्छे मौके की तलाश में था। वह न माँ का पक्ष लेता, न पत्नी का। अपने को इन दोनों के झगड़े से प्रायः अलग ही रखता था।

स्त्री अपनी सास को टूटे कठवत (कठुए) में खाना दिया करती थी। संयोग वश, एक दिन माँ के हाथ से कठवत गिर कर दो टुकड़े हो गया। बेटे ने माँ को डाँटा। लड़के की इस हरकत से उसे अचंभा हुआ। वह बोली 'बेटा ऐसा क्या अपराध हो गया, इस कठवतिया के टूटने में? यह तो पहले से ही चिरोई हुई थी। दो पैसे का कठवत टूटने पर इतनी नाराजगी?'

वह भी सुन रही थी, उसे भी अपने पति की माँ के प्रति डाँट पर ताज्जुब था। मन में खुशी भी थी कि माँ-बेटे की कहा-सुनी हो रही है। बेटे ने कहा— "माँ, कठवत के टूटने से मेरी नाराजगी का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे तो इसलिए बुरा लगा कि तुमने कठवत नहीं, "एक परम्परा ही तोड़ दी।"

माँ ने पूछा—कैसे? वह बोला—'तुम्हें तुम्हारी बहू टूटे कठवत में खाना देती है, तो परम्परया जब इसकी बहू आएगी तो इसे भी टूटे कठवत में खाना देगी। उसके आने तक यह टूटा कठवत घर में मौजूद रहना चाहिए था, जिससे वह सारी परंपरा देख-समझ ले कि सास के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है?'

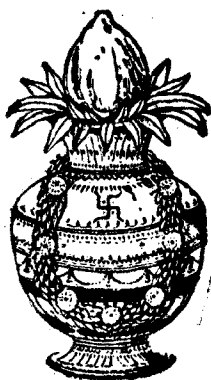
पति की इस गहरी चोट ने पत्नी को होश में ला दिया। तब से सास के प्रति उसका सारा व्यवहार बदल गया। अब तो सास की वह सेवा होने लगी कि सारा मुहल्ला वाह - वाह करने लगा।



## स्वराज्य का उपहास

सन् १९३० में हिन्दी के दैनिक पत्र ने 'हास-परिहास' स्तम्भ में लिखा था कि एक सज्जन विना टिकट सफर कर रहे थे। टिकट चैकर ने उन्हें पकड़ा, तो बोले—“और कुछ दिन तुम तंग कर लो। अब स्वराज्य मिलने वाला है, फिर तो जहाँ चाहेंगे, वहाँ विना टिकट घूमा करेंगे।”

स्वराज्य से पहले यह परिहास था, और अब ? अब यह सत्य हो गया है। स्वराज्य क्या मिला, जनता का विवेक ही नष्ट हो गया। आज अधिकार की मारा - मारी है, अधिकार के साथ उत्तरदायित्व भी कुछ है, इसका कोई भान ही नहीं रहा।



## चीनी डाक्टर

चीन में एक विदेशी यात्री ने—एक घर पर बहुत से दीपक जलते देखे। उसे कौतुहल हुआ कि बिना किसी वार - त्यौहार के इसी एक घर पर इतने दीपक क्यों जल रहे हैं ?

उसने किसी से पूछा— “इस घर पर इतने दीपक क्यों जल रहे हैं।”

जवाब मिला—“यह यहाँ के मशहूर डाक्टर का घर है।”

फिर पूछा—“क्या यहाँ सब डॉक्टरों के घर पर इसी तरह दीपक जलते रहते हैं ?”

“नहीं जी, और डाक्टरों के घर इतने दीपक नहीं मिलेंगे। यहाँ का यह रिवाज है कि जिस डाक्टर के हाथ के नीचे रोगी मरता है, उसके घर की छत पर तीन दिन तक उस रोगी के नाम का दिया जलता है। यहाँ के सब से बड़े और प्रसिद्ध डाक्टर होने की वजह से दूर - दूर से इसके यहाँ बेशुमार रोगी आते हैं और स्वभावतः इसके यहाँ मरने वालों की तादाद भी उतनी अधिक रहती है। इसीलिए इन डाक्टर साहब की छत हमेशा दीपकों से जगमगाती रहती है।”

यात्री ने पूछा,—“इतने आदमी इनके हाथ से मरते हैं, यह प्रत्यक्ष देखते हुए भी लोगों की श्रद्धा इन पर से हटती नहीं है ?”

जवाब मिला, “यही तो तमाशा है भाई, लोग देख कर भी नहीं देखते। लोग सोचते हैं कि महीने में हजारों आते हैं और

मरते तो सौ-दो सौ ही हैं। मरने वाले तो अपनी किस्मत से मरते हैं, उनका डाक्टर क्या करे ? जो बच जाते हैं, वे डाक्टर की दवा से बचते हैं। आने वाले हजार में अगर नौ सौ बचे, तो यह मान लिया जाता है—डाक्टर ने सौ को मरने दिया, परन्तु नौ सौ को तो बचा लिया।’



## अंधे की क्षमा का प्रभाव

आने - जाने वाले आदमियों का क्या ठिकाना? बाजार में बड़ी ही भीड़ थी। एक आदमी का पैर भीड़ में कुचला गया। बस, वह आवेश में आ गया और उसने कुचलने वाले के मुँह पर एक जोर का थप्पड़ जड़ दिया—‘अंधे दिखता नहीं?’

थप्पड़ खाने वाले ने हाथ जोड़ कर बहुत नम्रता से कहा—  
‘महाशय ! आपको यह जान कर दुःख होगा कि मैं अन्धा हूँ।’

थप्पड़ मारने वाला तो पानी - पानी हो गया। अंधे के पैरों में गिर कर वह क्षमा माँगने लगा। यह है, शान्ति रखने का विलक्षण प्रभाव।



## समय की सूझ

लखनऊ का एक प्रसिद्ध नबाब बड़ा ही अस्थिर चित्त व्यक्ति था। वह किसी भी कार्य को दृढ़ता पूर्वक नहीं कर पाता था। मानसिक दुर्बलता ने उसके जीवन को बेकार कर दिया था।

कहा जाता है—एक बार उसने एक व्यक्ति को किसी परगने का शासन करने के लिए अधिकारी नियुक्त कर के भेजा। ज्यों ही वह अधिकारी उस परगने में पहुँचा, त्यों ही उसको तो वापस लौटने का परवाना मिला और उसके स्थान पर किसी दूसरे आदमी को नियुक्त कर के भेज दिया। इस दूसरे आदमी को पहुँचते देर न हुई कि वह भी वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर तीसरा आदमी आ पहुँचा। उस की भी वही दशा हुई।

हाँ तो अब नबाब साहब की आज्ञा पाकर चौथा आदमी उस परगने की ओर चलने लगा, तब उसे चल-चित्त नबाब के विचारों की अस्थिरता का ध्यान आया। वह व्यक्ति बड़ा ही चतुर और कुछ मसखरा भी था। इसलिए घोड़े पर दुम—पूँछ की तरफ मुँह करके सवार हुआ और नगर से बाहर शहर की तरफ मुँह किए महल के पास से परगने की ओर चलने लगा। उस समय नबाब साहब महल की छत पर टहल रहे थे। उन्होंने उसे घोड़े पर पूँछ की ओर मुँह करके बैठे हुए देखा, तो वे बड़े आश्चर्य एवं कुतूहल में पड़ गए।



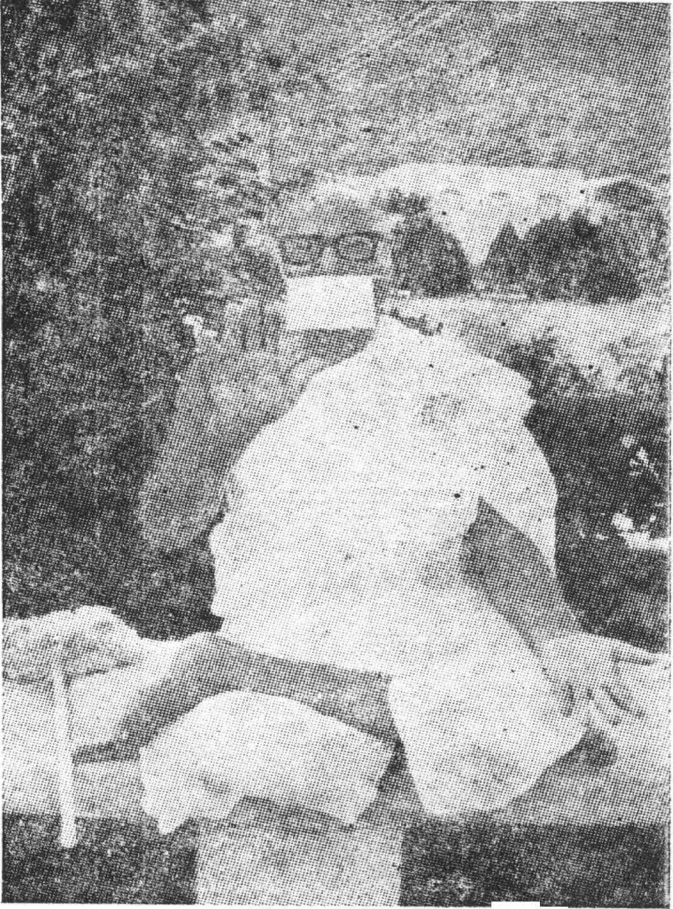
भटपट पीछे से एक तेज सवार भेजकर उसे वापस बुलवाया और घोड़े पर इस प्रकार उलटे सवार होने का कारण पूछा। उसने बड़ी ही संजीदगी से उत्तर दिया—“हुज़ूर ! मुझे से पहले तीन आदमी वहाँ काम करने के लिए भेजे गए और वहाँ पहुँचते ही भटपट बिना किसी कारण के वापस बुला लिए गए। इसलिए मुझे भी डर था कि मैं चल तो रहा हूँ, पर मुझे भी वापस बुलाने के लिए पीछे से परवाना आता ही होगा ? उस परवाने के इन्त-जार में ही मैं घोड़े पर महल की तरफ मुँह किए बैठा था !”

नवाब साहब अपनी अस्थिर चित्तता पर बहुत ही लज्जित हुए। इसके पश्चात फिर कभी उन्होंने अपना निर्णय बदलने में इतनी शीघ्रता नहीं की।

## खूब मिले !

पाँच आदमी एक जगह ब्रैठे इधर - उधर की गप्प लड़ा रहे थे। एक था बहरा, दूसरा था अंधा, तीसरा था लंगड़ा, चौथा था लूला और पाँचवाँ था कंगाल—पूरा दरिद्र नारायण।

अचानक बहरा बोला—“मुझे ऐसा सुनाई पड़ता है कि चोर आ रहे हैं।” इस पर अंधा बोला—“कुछ दिखाई तो मुझे भी ऐसा ही दे रहा है।” लंगड़ा डर कर बोला—“चलो, यार भाग चलें।” इस पर लूले को जोश आ गया—“मैं पकड़ लूँगा बेई-मानों को।” कंगाल गुस्से में चिल्ला उठा—“अरे, क्या तुम सब मिलकर मुझे लुटबाओगे ?”



**अमर - मुक्तक**



## मैं ही मेरा ईश्वर

मेरा ईश्वर मेरे अन्दर,  
मैं ही अपना ईश्वर हूँ।  
कर्ता, धर्ता, हर्ता अपने,  
जग का मैं लीलाधर हूँ।।  
शुद्ध, बुद्ध, निष्काम, निरंजन,  
कालातीत सनातन हूँ।  
एकरूप हूँ सदा - सर्वदा,  
ना नूतन, न पुरातन हूँ।।

## पुरुषार्थ

जीवन - नीका का नाविक है,  
एक मात्र पुरुषार्थ महान्।  
सुख - दुःख की उत्ताल तरंगें।  
कर न सकें उसको हैरान।



मैं ही मेरा ईश्वर।

२७

## कर्म - योग

सत्त्वहीन नर बातें करते,  
कर्म - योग से कौसों दूर ।  
मिट्टी के कच्चे घट की ज्यों,  
जीवन होता चकनाचूर ॥

स्वप्न स्वप्न हैं, स्वप्नों से क्या,  
होता जीवन का निर्माण ?  
श्रम की सतत साधना में ही,  
रहा हुआ है जन - कल्याण ॥

## विश्वास

घोर निराशा - तमस् घिरा हो,  
विश्वासों के दीप जलाओ ।  
सब - कुछ टूटे, टूट गिरे, पर-  
मत अपना विश्वास गिराओ ॥

विश्व बदलता, विश्वासों पर,  
विश्वासों पर विजय - पराजय ।  
विश्वासों के बल झुकता है,  
सहसा दुर्गम, अचल हिमालय ॥

## साधना का विवेक

दो अतियों के मध्य, शुद्ध—  
जैनत्व बिराजित रहता है।  
धर्म नहीं अतिवादी होता,  
निरतिवाद - रत रहता है ॥  
देह नहीं शोषित करना है,  
और न पोषित करना है।  
शोषित - पोषित मध्य संयमित,  
रहना निरति विचरना है ॥

## मन के जीते जीत

उठो मनस्वी, बनो तपस्वी,  
क्यों रो - रो आँखें मलते हो।  
मंजिल कुछ भी दूर नहीं है,  
यदि दृढ़ कदमों से चलते हो ॥  
मन का हारा ही हारा है,  
मन का जीता ही जीता है।  
तन में प्राण रहे तो क्या है ?  
मृत है, जो मन से रीता है ॥

## कर्म में अकर्म

जीवन का पथ पंकिल पथ है,  
संभल - संभल कर चलना ।  
क्षण - क्षण पल - पल जागृत रहना  
हो न कभी कुछ स्वलंला ॥

सुख - दुखः दोनों क्षण भंगुर हैं,  
क्या हँसना, क्या रोना ?  
रहो अकर्म, कर्म - रत रह कर  
मन का कलिमल धोना ॥

## धरा का देव

प्राणों की आहृति देकर भी,  
दुःखित जन का करता त्राण ।  
हानि देख पर की जो तड़पे,  
वही धरा का देव महान् ॥

रोता आया मानव जग में,  
अच्छा हो अब हँसता जाए ।  
और दूसरे रोटों को भी,  
जैसे बने हँसाता जाए ॥

## आत्म - बोध

आत्म - बोध के विमल स्रोत में,  
अन्तरतम को धो लो ।  
और सभी कुछ पीछे, पहले-  
मन के बन्धन खोलो ॥

## चिन्तन की लौ

चिन्तन की लौ दीप्त अगर है,  
होगा ज्ञानोद्योत अमन्द ।  
बुझा दीप तम हर न सकेगा,  
चाहे रचो कोटी छल - छन्द ॥

## क्षमा पर्व - पर्युषण

घृणा, घृणा से, वैर, वैर से,  
कभी शान्त हो सकते क्या ?  
कभी खून से सने वस्त्र को  
खून ही से धो सकते क्या ?  
क्षमा, शान्ति, सद्भाव, स्नेह की,  
गंगा की निर्मल धारा ।  
गहरी डुबकी लगा हृदय से,  
धो डालो कलिमल सारा ॥



## वसन्त का स्वागत

पतझड़ आता है, आएगा,  
उसे रोकना यत्न व्यर्थ है ।  
जीर्ण - शीर्ण गिरते पत्तों पर,  
रोना - धोना कौन अर्थ है ?  
पतझड़ जाता है, आएगा—  
नव वसन्त हंसता - खिलता ।  
जीवन का आनन्द उसी में,  
मधुर - मधुरतम है मिलता ॥

## महाश्रमण महावीर

वीर ! तुम्हारे पद - पंकज युग,  
इस धरती पर जिधर चले ।  
कदम - कदम पर दिव्य भाव के,  
सुरभित; स्वर्णिम पुष्प खिले ॥  
हिंसा, घृणा वैर के कण्टक,  
ध्वस्त हुए पीड़ा - कारी ।  
जन - मन में निष्काम प्रेम की,  
महक उठी केसर - क्यारी ॥

## सत्य - पक्ष

अत्याचारी दमन - चक्र के,  
सम्मुख गिरि - सम अड़े रहो ।  
अन्तिम रक्त - बिन्दु तक अपने,  
सत्य - पक्ष पर खड़े रहो ॥

मृत्यु एक दिन आएगी ही,  
तन को मार गिराएगी ।  
किन्तु सत्य, चिद् आत्मदेव को,  
छू न कभी भी पाएगी ॥

## पवित्रता और वीरता

तन धोने से क्या होना है,  
जब तक मन न धुले ।  
सब - कुछ बदले इक पलभर में,  
जब अन्तर बदले ।

बाह्य शत्रु पर विजय प्राप्त कर,  
क्या उछले मचले ?  
वीर वही जो अन्तस्तल के,  
रिपुदल को कुचले ॥

## दाता

जल - संचित करने वाला वह,  
सागर कितना गंदा खारा ।  
मुक्त बरसने वाले घन की,  
कितनी मधु निर्मल जल - धारा ॥

दाता सुख के द्वार खोलता,  
पाता जन्म - जन्म सुख - शान्ति ।  
किन्तु, संग्रही सुख के बदले,  
पाता सदा दुःख उद्भ्रान्ति ॥

## ज्ञान - ज्योति

बुझते मन से दीप जलाये,  
उन दीपों से क्या होगा ?  
अधरों पर मुस्कान न खेली,  
फुलझड़ियों से क्या होगा ?

लाखों दीप जलें शास्त्रों के,  
पर मन तम से प्लावित है ।  
ज्ञान - ज्योति के स्पर्श बिना मन,  
कभी न होता द्योतित है ॥

## अमर सत्य

सत्य सत्य है, सदा सत्य है,  
उसमें नया पुराना क्या ?  
जब भी प्रकट सत्य की स्थिति हो,  
स्वीकृति से कतराना क्या ?  
सत्य, सत्य है, जहां कहीं भी,  
मिले उसे अपनाना है ।  
स्व - पर पक्ष से मुक्त सत्य की,  
निर्भय ज्योति जलाना है ॥

## स्वर्ग और नरक

सदाचार है स्वर्ग पुण्य की—  
ज्योति सदा जलती रहती है ?  
मंगलमय सुख, शान्ति, प्रेम की,  
सृष्टि नित्य नूतन रहती है ॥  
कदाचार है नरक, पाप की—  
घोर निशा छायी रहती है ।  
रोग, शोक, भय, उत्पीड़न की,  
हाय - हाय हर क्षण रहती है ।

## मिलकर चलो

मिलकर सोचो, मिलकर बोलो,  
मिलकर चलो, एक ही पथ पर ।  
घृणा - द्वेष से दूर रहो नित,  
करो सर्व व्यवहार प्रीतिकर ॥

## जैसे को तैसा

यह भी अच्छा, वह भी अच्छा,  
अच्छा - अच्छा सब मिल जाए ।  
हर मानव की यही तमन्ना,  
किन्तु प्राप्ति का भर्म न पाए ॥  
अच्छा पाना है, तो पहले,  
खुद को अच्छा क्यों न बना लें ?  
जो जैसा है, उसको वैसा—  
मिलता, यह निज मंत्र बना लें ॥



# जीवन

निर्भर, निर्भर तब तक रहता,  
जब तक भर - भर बहता ।  
गति ही जीवन, जीवन ही गति,  
गति में जीवन रहता है ॥

मानव तेरा भाग्य नहीं है,  
अन्य किसी के हाथों में ।  
जो कुछ अच्छा - बुरा है वह सब,  
रक्षित तेरे हाथों में ॥

मानव बनना, मानव बन जा,  
दानव बन जा, या पशु बन जा ।  
श्रेष्ठ देव बन जा या बढकर,  
विश्व पूज्य श्री जिनवर बन जा ॥



## आदमी

आदमी को आदमी बनना सिखाया वीर ने,  
देवता सोया हुआ जग का जगाया वीर ने ।  
विश्व के जन एक हैं, सब यह बताया वीर ने,  
घोर तम में सत्य का सूरज दिखाया वीर ने ॥

वीर की क्या देशना थी,  
बस सुधा की वृष्टि थी ।  
हो गई जागृत सचेतन,  
जो कि मूर्च्छित सृष्टि थी ॥

## मंगल

मंगल मन हो, मंगल वाणी,  
मंगल हों सब कर्म अनूप ।  
मन की तमसा मिट जाए तो,  
नर ही है नारायण - रूप ॥



## अन्तर की आँखें

बाहर की आँखों का क्या,  
आँखें अन्तर की खोलो ।  
हर प्राणी में छुपा महेश्वर,  
कर दर्शन निर्मल हो लो ॥

कटुता का व्यवहार किसी से,  
कभी भूलकर मत करना ।  
मन, वाणी, कर्मों में प्रतिपल,  
बहे प्रेम का मधु भरना ॥

## नव चेतना

घिसी - पिटी बातों में उलझे,  
रहने वालो, क्या पाओगे ?  
नई रोशनी देख न पाए—  
तो तुम जग से मिट जाओगे ॥

नयी चेतन, नयी स्फूर्ति से,  
नये कर्म का पथ अपनाओ ।  
मरने पर क्या जीते-जी ही,  
स्वर्ग धरा पर ला दिखलाओ ।



## शाश्वत - स्वर

क्षण - क्षण भंगुर होते तन में,  
शाश्वत का स्वर बोल रहा है ।  
कौन मर्त्य है, कौन अमृत है,  
बूँघट के पट खोल रहा है ॥

जन्मा, फिर भी रहा अजन्मा,  
मरकर भी मैं अमर रहा हूँ ।  
नश्वर अन्य, अनश्वर चित् मैं,  
चर हो कर भी अचर रहा हूँ ॥

## मधुमय जीवन

जीवन का कण-कण मधुमय हो,  
मधुरस क्षिति पर बरसाओ ।  
अन्दर में अपने प्रसुप्ततम,  
ज्योतिर्मय - भाव जगाओ ॥



## प्रेरणा और स्वप्न

भूत हो गया भूत, भूत को—  
बस पीछे ही रहने दो ।  
आगे एक भविष्य भाव की—  
धारा ही को बहने दो ॥

लो अतीत से भव्य प्रेरणा,  
देखो, वर भविष्य के सपने ।  
वर्तमान में रहो कर्मरत,  
पूर्ण करो सब सपने अपने ॥

वीर, तुम्हारे श्री चरणों में,  
कोटी - कोटी वन्दन अर्पित ।  
जन - कल्याणी नव शुभ वाणी,  
रहे विश्व में अनुगुंजित ॥



## सार्थक जन्म

शुचि कर्मों की दीपमालिका,  
जग का तमस् हरेगी ।  
स्नेह, शील, शान्ति, सुख की जय-  
लक्ष्मी घर-घर में विचरेगी ॥  
तम की कारा तोड़, ज्योति के-  
जग - मग दीप अलाओ ।  
मानव - जन्म तभी है सार्थक,  
जब मानव बन जाओ ॥

## मन की विराटता

जीवन की प्रिय मधुशाला में,  
मधुरस की कुछ कमी नहीं है ।  
पीओ और पिलाओ जी-भर,  
लघु मन करना ठीक नहीं है ॥  
मन की लघुता जैसा कोई,  
जग में दूजा पाप नहीं है ।  
और महत्ता जैसा कोई,  
अन्य सुपावन पुण्य नहीं है ॥

## पर्युषण का अर्थबोध

तन को धोते जीवन गुजरा,  
अब तो मन को धो लो ।  
बाहर के बन्धन, क्या - कुछ है ?  
मन के बन्धन खोलो ॥

पर के द्वार - द्वार पर भटके,  
कूकर की गति मति से ।  
लौट आइए, अपने पन में,  
पर की मति से, रति से ॥

## स्वर्णिम स्वप्न

विगत हुआ मृत्, उसका केवल-  
अनुभव रस बन रहता है ।  
जो भविष्य के विकट क्षणों में,  
ज्योति जगाता रहता है ॥

चलिए, आगे बढ़िए, मुड़ - मुड़-  
मत पीछे की ओर देखिए ।  
निज - पर की अभ्युन्नति के हित,  
पद - पद स्वर्णिम स्वप्न देखिए ॥

## नव - वर्ष

मया पुराणा वर्ष, आ गया-  
अभिनव रूप लिए नव वर्ष ।  
विश्व - जगत् के जन - जन का हो,  
मंगलमय नित नव उत्कर्ष ॥

कोई रोती आँख मिले ना,  
मिले न मुख की कृष्ण पुकार ।  
हंसता - खिलता हर जीवन हो,  
खुले धरा पर स्वर्ग - द्वार ॥

## धर्म : अन्तर्ज्योति

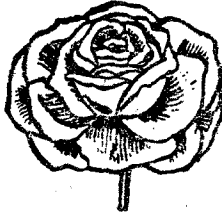
धर्म हृदय की दिव्य ज्योति है,  
सावधान ! बुझने ना पाये ।  
काम - क्रोध, मद - लोभ, अहं के,  
अन्धकार में डूब ना जाये ॥

देश - काल सापेक्ष नियम हैं,  
मत - पंथों के भिन्न परस्पर ।  
धर्म सहायक हो सकते हैं,  
पर न धर्म है, चलें समझकर ॥

## साधना का लक्ष्य

नर ? तुझ में सोया नारायण,  
उसे जगाना यही साधना ।  
अन्य सभी जो घोर - घोरतर,  
क्रिया - काण्ड हैं, मात्र यातना ॥

अन्तर्-मुख यदि नहीं हुआ तो,  
बाहर में क्या पाएगा जन ?  
बहिर्-मुखी वैभाविकता में,  
है केवल भटकन - ही - भटकन ॥



## स्वर्ग - नरक

स्वर्ग कहाँ है, नरक कहाँ है ?  
पूछ रहे हैं, कब से जन - जन ।  
किन्तु, न देख रहे हैं कैसा,  
है अपने में, अपना ही मन ॥

स्वच्छ - निर्मल अपना ही मन,  
दिव्य स्वर्ग है मंगलकारी ।  
हिंसक, क्रूर, विकारी अपना—  
मन ही है नरक अमंगलकारी ॥

और, न कोई दुःख - मूल है,  
दुःख - मूल है, निज अज्ञान ।  
दुःख मुक्त हो, सुख - पाना तो—  
निज स्वरूप पर रखिए ध्यान ॥





## अमर - डायरी





० मनुष्य पाप क्यों करता है ?

मनुष्य के पेट का गड्ढा—जिसे संस्कृत में उदरदरी भी कहते हैं, बहुत छोटा है, सीमित है, किंतु मन का गड्ढा मनोदरी, उदरदरी से बहुत बड़ा है, असीम है और उसी को भरने के लिए अधिकांश पाप होते हैं ।

पर, आश्चर्य यह है कि पाप करके भी आज तक कोई उस गड्ढे को भर नहीं पाया है ।

० प्रसिद्ध सन्त डायोजिनीज ने एक बार उदरदरी को भरने के लिए संलग्न मनुष्यों को लक्ष्य करके कहा था—“जिन घरों में सामग्री भरी होती है, उनमें चूहे भरे हो सकते हैं । उसी तरह जो लोग बहुत खाते हैं, वे रोगों से भरे हो सकते हैं ।

० साधक को कम खाना चाहिए, कम बोलना चाहिए ।

० दूसरे को गिरता देखकर, जो अपने को संभाल कर चले, वह ज्ञानी है ।

स्वयं एक बार गिरने के बाद, दूसरी बार सम्भल कर चले, वह अनुभवी है ।

जो एक बार गिरने पर भी उन्मत्त बन कर ही चलता रहे, वह अज्ञानी है ।

० एक सज्जन अपना अनुभव सुना रहे थे—वे एक बार तालाब के किनारे पर टहल रहे थे । अचानक एक बच्चा तालाब के किनारे खेलता - खेलता पाँव फिसल जाने से अन्दर गिर गया ।

रोने - चिल्लाने लगा । उन्हें दया आई । खुद तैरना नहीं जानते थे, किन्तु फिर भी उसे बचाने के भावावेश में वे तालाब में कूद पड़े । पर, अब तो हालत और बुरी हो गई ? बच्चा तो हाथ नहीं आया, खुद भी डूबने लगे, तो बेहतास हाथ-पैर मार कर छटपटाने लगे । इतने में कुछ लोग आ गए । और, किसी तैराक ने दोनों को ही बाहर निकाल लिया ।

मैंने उनके अनुभव का भाष्य किया—जो स्वयं तैरना नहीं जानता है, वह दूसरे को तिराने जाएगा, तो स्वयं भी डूबेगा और दूसरे को भी डूबो देगा ! इसी प्रकार जो स्वयं नहीं सुधरा है, वह दूसरों को सुधारने का प्रयत्न करेगा, तो वह स्वयं तो बिगड़ा ही है, दूसरों को भी बिगाड़ देगा ।

◦ अनेकान्त एक टकसाल के समान है, जहाँ सत्य के भिन्न-भिन्न खण्ड एक सांचे में ढलकर पूर्ण सत्य का आकार पाते हैं ।

◦ जो हर घड़ी दूसरों के अवगुण ही देखता रहता है और प्रत्येक क्षण पराई निन्दा में ही लगा रहता है, वह एक प्रकार का 'ब्लेक बोर्ड' को साफ करने वाला मैला डस्टर है ।

◦ महाभारत में कहा गया है— जिसका तन भले ही दुर्बल है, किन्तु मन सुदृढ़ और बलशाली है, वह वास्तव में बलवान ही है—  
“प्राज्ञ एको बलवान् दुर्बलोऽपि”

◦ हृदय की उदारता के बिना दान नहीं दिया जा सकता । किन्तु, दान के साथ यदि मधुर - वाणी और निरभिमानीता का

संयोग हो, तो वह दान, महान् दान बन जाता है ।

० आज से लगभग हजार वर्ष पहले गुजरात का महामन्त्री तेजपाल हो गया—जिसने देलवाड़ा (आबू) के विश्व प्रसिद्ध जैन मंदिरों के रूप में भारतीय स्थापत्य कला का अद्भुत शिल्प चमत्कार अंकित करवाया ।

मंत्री तेजपाल की धर्मपत्नी थी अनुपमा देवी । बड़ी उदार, सुशील और मधुर-भाषिणी ! अनुपमा देवी एक बार मुनियों को घृतदान कर रही थी कि इधर-उधर की भीड़भाड़ एवं प्रमाद से एक मुनि के हाथ से घृतपात्र छूट कर देवी की पीठ पर आ गिरा । बहुमूल्य कौशेय वस्त्र घी से लथपथ हो गया ।

मंत्री तेजपाल ने यह सब देखा तो, उनकी आँखों में क्रोध की अरुणिमा चमक उठी । वे मुनि के अविवेक पर कुछ बोलने को ही थे, कि देवी ने मंत्री के क्रोध को शान्त करते हुए कहा—“देव ! यह आपकी ही कृपा है कि मुझे यों मुनि-जनों के द्वारा गिराए गए घृतपात्र से घृताभ्यंग ( घृत-स्नान ) करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । मैं तो धन्य हो गई । वस्त्रों का क्या है ? यदि आप हलवाई होते और मैं आपकी हलवाईन, तो ये वस्त्र तो रोज ही घी-तेल से गन्दे होते ही न ?”

देवी की मधु-सी मीठी वाणी सुनी, तो मंत्री का कोप शान्त हो गया । मंत्री के कोप से आशंकित सभी दर्शक देवी की सहिष्णुता, विनम्रता और मधुर - वाणी पर मुग्ध हो गए ।

अनुपमा देवी का माधुर्य युक्त विनम्र - दान आज भी महान् प्रेरणा दे रहा है ।

० दुनिया में सब वस्तुएँ चंचल हैं, पर इससे मनुष्य को अधिक हानी होने वाली नहीं है, यदि उसकी बुद्धि स्थिर है ।

० पाखण्ड तभी तक आकर्षक और सुन्दर लगता है, जब तक वह सदाचार और सरलता के सुनहले आवरण को ओढ़े रहता है ।

और जब पाखण्ड अपने असली रूप में उपस्थित होता है, तो निश्चित ही वह बहुत अनाकर्षक और अप्रिय लगता है ।

० अहंकार की दवा एक है—विनम्रता । यह सिर्फ अपने अहंकार को ही ठीक नहीं करती, किन्तु दूसरों के अहंकार को भी ठीक कर देती है । आर्य सुधर्मा ने महावीर का एक वचन उद्धृत किया है—  
“माण मह्वया जिणे” अभिमान को मृदुता से जीतो ।

एक सड़क के किनारे दो हरे - भरे पेड़ खड़े थे, एक था आम का और दूसरा बांस का ।

एक दिन खूब जोर की आंधी चली । जाने कितने कच्चे-पक्के घर गिर गए, छप्पर उड़ गए । आम का पेड़ भी जड़ से उखड़ कर बांस के वृक्ष के समीप आ गिरा ।

आम का पेड़बोला—‘भाई ! तुम तो हमसे बहुत कमजोर हो, फिर भी भीषण आंधी-तूफानों का सामना कैसे कर लेते हो ?

बांस के पेड़ ने जरा मुस्कराकर उत्तर दिया—“दादा ! तुम बिल्कुल ठीक कहते हो, मैं तुमसे बहुत कमजोर हूँ । किन्तु आंधी-तूफान को जीतने के लिए ताकत की जरूरत नहीं, भुक्ने की जरूरत होती है । जब तूफान आता है, मैं भुक् जाता हूँ । अतः मेरा बाल भी बांका नहीं होता ।”

बांस का उत्तर सुनकर आम मन ही मन सोच उठा—“सच, है, उद्धत् को जीतने के लिए विनय की जरूरत होती है।”

० जिस जीवन में एक क्षण का महत्त्व नहीं है, वहाँ पूरे जीवन का ही महत्त्व नहीं है। क्षण हमारी जीवन पुस्तक का एक पृष्ठ है, और इस पृष्ठ के अतिरिक्त पुस्तक है ही क्या ?

सैकड़ों पृष्ठों का समवाय ही तो पुस्तक है। असंख्य बूदों का मिलन सागर है, सौ पैसे का योग एक रुपया है और कुछ क्षणों की शृंखला ही जीवन है।

० अच्छाई और बुराई, पाप और पुण्य वस्तु में नहीं है। पुण्य-पाप मनुष्य के मन में है। मनुष्य यदि फूल चुनना चाहे, तो वे संसार के उपवन में हैं और कांटे बीनने चाहे तो वे भी।

० जो व्यक्ति सोचता है, पर करता नहीं, मार्ग बताता है पर स्वयं चलता नहीं, उसका विचार और ज्ञान शून्य है, सत्वहीन है।

० मैं देखता हूँ कि जो तस्वीरें स्वयं स्थिर नहीं रह सकती उन्हें किसी दीवार के सहारे लटकाया जाता है और जो व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के सहारे कुछ कर नहीं सकते, उन्हें दूसरों के इशारे पर चलाया जाता है।

० सुखी बनने का अर्थ है—आत्म - निर्भर बनना।

० कर्म ही जीवन है। निष्क्रिय मनुष्य आलसी होता है और आलसी क्षुद्रजीवी होता है और कर्मशील सदा युवा।

० जो मनुष्य अपने दुःख से आप घबराता है, वह कभी कोई साहसपूर्ण कार्य नहीं कर सकता ।

० स्वात्मपीडा की भावना से बुद्धि कुंठित होती है, बौद्धिक कुंठा आत्म-श्रद्धा की हत्या करती है । जिसे अपने आप पर श्रद्धा-विश्वास नहीं, वह अपने हाथों अपना ही विनाश कर लेता है ।

धन, बल, और बुद्धि जहाँ हार जाते हैं, वहाँ सिर्फ आत्म-श्रद्धा ही मनुष्य को सहारा देकर संकटों से उबार सकती है ।

० जो दूसरों की हानी करके भी अपना लाभ करना चाहता है—वह निकृष्ट कोटि का मनुष्य है ।

जो अपना लाभ करे, किन्तु दूसरों को हानी न पहुँचाए, वह मनुष्य मध्यम कोटि में आता है ।

जो अपने लाभ से दूसरों को भी लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता रहे, वह उत्तम मनुष्य है ।

कार्य करने की ये तीन पद्धतियाँ हैं । यदि आप तीसरी पद्धति को न आपना सकें, तो कम - से - कम पहली पद्धति को तो मत अपनाइए ।



## कथा साहित्य

१. भगवान महावीर की बोध कथाएँ	३.००
२. जैन इतिहास की प्राचीन कथाएँ	३.५०
३. जैन इतिहास की प्रेरक कथाएँ	३.५०
४. जैन इतिहास की प्रसिद्ध कथाएँ	३.५०
५. प्रत्येक बुद्धों की जीवन कथाएँ	३.५०
६. सोलह सती	४.००
७. बुद्धि के चमत्कार	२.५०
८. वर्धमान - महावीर	३.५०
९. सागर के मोती	३.५०
१०. सत्य हरिश्चन्द्र (काव्य)	१२.००